सिद्धयोग

संस्थापक : योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज

सिद्धगुफा प्रकाशन सवाई-283202 (आगरा) उ.प्र.

वर्ष : 56 अंक : 01
अप्रैल 2023

प्रकाशन तिथि : 01.04.2023

मूल्य - एक प्रति : 20/-, द्विवार्षिक : 400/-

अमृतकण

श्रद्धा धर्मसुता देवी पावनी विश्व भाविनी
सावित्री प्रसवित्री च संसारार्णव तारिणी
श्रद्धया ध्यायते धर्मो विद्वद्‌भिश्चात्मवादिभिः
निष्किंचनास्तु मुनयः श्रद्धावन्तो दिवं गताः।

श्रद्धा देवी धर्म की पुत्री है, वे विश्व को पवित्र एवं अभ्युदयशील बनाने वाली है। इतना ही नहीं, वे सावित्री के समान पावन, जगत को उत्पन्न करने वाली तथा संसार सागर से उद्धार करने वाली है। आत्मवादी विद्वान श्रद्धा से ही धर्म का चिंतन करते हैं। जिनके पास किसी भी वस्तु का संग्रह नहीं है, ऐसे आकिंचन मुनि श्रद्धालु होने के कारण ही दिव्य लोकों को प्राप्त हुये हैं।

शैल समं पापं विस्तीर्णं बहु योजनम्
भिद्यते ध्यान योगेन नान्यो भेत्ता कदाचन्।

यदि पापों का पहाड़ भी हो तो वह ध्यान योग से नष्ट किया जा सकता है। उसको नाश करने का दूसरा अन्य कोई सबल साधन नहीं है।

आपूर्य माणम चल प्रतिष्ठं,
समुद्रमापः प्रविशन्ति यद्वत्।
तद्वत्कामा यं प्रविशन्ति सर्वे,
स शान्तिमाप्नोति न कामकामी।।

जिस प्रकार से सारी नदियाँ अपना नामरूप खोकर समुद्र में समा जाती है उसी प्रकार से जिस योगी की सभी कामनायें आत्म प्रकाश में विलीन हो जाती हैं वह शान्ति को प्राप्त कर लेता है किन्तु कामनाओं का आकाँक्षी अशान्त ही बना रहता है।

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक-पत्र

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्
मर्त्योमृत्योर्मुख विवरतो, मुक्तिमाप्नोति सद्यः।
तत्प्राप्यर्थान् बहुतर विशदान् योगशास्त्रोपदेशान्
कल्याणानाम् भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।

अर्थ :- शुद्ध (निर्विकार) स्वभाव वाले परम ब्रह्म का ध्यान करते-करते मृत्यु के मुख में पड़ा हुआ मनुष्य शीघ्र ही मुक्ति को प्राप्त हो जाता है। उस मुक्ति की प्राप्ति के उपाय स्वरूप योग ध्यान शास्त्र के सिद्धान्तों की विस्तृत व्याख्या करने वाली ''सिद्धयोग'' नामक पत्रिका सत्पुरुषों के परम कल्याण की सिद्धि (प्राप्ति) में सक्षम व सहायक हो।

वर्ष : 56 अप्रैल 2023 अंक : 01

व्यसनेवार्थ कृच्छे वा भये वा जीवितान्तके।
विमृशन्वै स्वयाबुद्धया धृति माप्नावसीदति।।

अर्थात् धैर्यवान व्यक्ति, स्वजन का वियोग होने पर, धन का नाश होने पर भय सामने आने पर और प्राणों पर संकट होने पर भी अपनी बुद्धि से काम लेते है, अतः कभी दुःखी नहीं होते।

●●●

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सवांई (एत्मादपुर) आगरा

SIDDHYOG

HINDI MONTHLY

Propagating Yoga & Spiritual values

संस्थापक :

योग–योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

सम्पादक :

आचार्य (डा.) दासलाल ब्रह्मचारी

संयुक्त सम्पादक
डॉ. विजय सिंह

प्रबन्ध सम्पादक :
समस्त योग प्रचार मण्डलों के अध्यक्ष एवं गुरु भाई–बहिन

अनुक्रमणिका

1.	विशेष लेख- योगयोगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज	3
2.	सम्पादकीय	10
3.	श्रीमद्भागवत में योगपरिचर्चा- डॉ. विजय सिंह	14
4.	लीलाधारी की लीलाएँ- श्री जगदीश राए बंसल	18
5.	एक महत्त्वपूर्ण यथार्थ सत्य- अन्तूराम यादव	23
6.	मन्त्र-विवेक- श्री शिवनाथ जी मेहरोत्रा	26
7.	योग का तात्पर्य और चरित्र-निर्माण- श्री वैद्यनाथ जी महाराज	30
8.	आचार्याभिमान योग- आचार्य श्री चन्द्रहास शर्मा	33
9.	यौगिक प्रश्नोत्तरी- पूज्यपाद श्री गुरुदेव जी द्वारा	40
10.	शुचिता की आवश्यकता- श्रीमती सरिता भारद्वाज	47

एक प्रति	: रु. 22.00
वार्षिक शुल्क	: रु. 180.00
द्विवार्षिक	: रु. 400.00
आजीवन (10 वर्षीय केवल)	: रु. 1000.00

विशेष लेख

मेरे श्री गुरुदेव

योगयोगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुरेव परं ब्रह्म तस्मै श्री गुरवे नमः।।

मैं अपने श्री गुरुदेव के चरणारविन्द की महिमा किन शब्दों में लिखूँ यह मेरी समझ में नहीं आ रहा। गुरुदेव एक ऐसा शब्द है जो सभी के लिए मान्य है और हर व्यक्ति जो किसी भी प्रकार से गुरुदेव की शरणागति प्राप्त कर चुका है, उसके लिए उसके गुरुदेव पूर्ण ब्रह्म हैं। साधक जब तक गुरुदेव के स्वरूप में ईश्वर बुद्धि धारण नहीं करता तब तक वह परम श्रेय के पथ का पथिक नहीं बन सकता, इसलिए भारतीय संस्कृति का ज्ञान रखने वाली भारतीय जनता अपने–अपने गुरुदेव के चरणारविन्द में पूर्ण ईश्वर बुद्धि रखती है व श्री गुरुदेव के चरणारविन्दों में न्यौछावर होना अपना परम पुनीत सौभाग्य समझती है। गुरुदेव क्या हैं और उनका स्वरूप क्या है? यह एक पृथक लेख का विषय है, जिसका प्रकाशन इस पत्र के किसी अंक में अवश्य होगा। फिर भी मैं इतना बतला देना उचित समझता हूँ कि गुरुदेव के दो स्वरूप होते हैं–एक उनका अपना निज स्वरूप और दूसरा साधक की श्रद्धा से निर्माणित स्वरूप। जगदात्मा भगवान् श्रीकृष्ण ने अपने मुखारविन्द से श्रीमद्भगवद्गीता के 17वें अध्याय में कहा है–

सत्त्वानुरूपा सर्वस्य श्रद्धा भवति भारत।
श्रद्धामयोऽयं पुरुषो यो यच्छ्रद्धः स एव सः।।

अर्थात् परमात्मा का रूप श्रद्धामय है, जैसी जिसकी श्रद्धा होती है वैसा ही उसमें सच्चिदानन्द घन नित्य चेतन का स्वरूप होता है। श्रद्धा साधक के अपने हृदय का पवित्र उद्गार है। श्रद्धावान् व्यक्ति जिसके विषय में जो सोचता है वहीं से उसको ईश्वरीय शक्ति मिल जाती है। धन्ना जाट, नामदेव आदि के जितने उदाहरण मिलते हैं वह सबके सब श्रद्धा के ही उज्ज्वल प्रतीक हैं। किसी साधारण व्यक्ति को ईश्वरीय भावना से देखना यह भक्त के हृदय की पवित्र भावना है व ईश्वर का ईश्वर होना उसकी अपनी यथार्थता है। गुरुदेव के विषय में भी सभी आस्तिक लोगों की ईश्वरीय भावना होती है और अपनी भावना के अनुरूप ही वह लोग फल हो पा लेते हैं **''यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी।''** इसके

अतिरिक्त यदि श्रद्धेय पुरुष परिपूर्ण है और साधक श्रद्धा का पुतला है तो अभीष्ट लाभ में कोई शंका का स्थान है ही नही। मेरे गुरुदेव जिनके विषय में यह पंक्तियाँ लिखने लगा हूँ सिद्धों के महा सिद्ध, सर्व समर्थ योगयोगेश्वर व सर्वत: परिपूर्ण हैं। उनकी पवित्र ख्याति को बहुत ही कम लोग जान पाये हैं। सम्भव हो सकता है कि इस विषय में उनका अपना ही संकल्प हो किन्तु उनके चरणारविन्दों के चिन्तन करने वाले सर्वसाधारण जन समुदाय के अन्दर जो–जो चमत्कारिक घटनायें घटित होती रहती हैं उनका इस छोटे–से लेख के अन्दर लिखना भी सम्भव नहीं हो सकता।

उनकी पवित्र जन्मभूमि अमृतसर (पंजाब) है। अमृतसर में ज्योतिष विद्या के गण्यमान्य विद्वान् महामान्य पं. गण्डाराम जी ज्योतिषी के घर में उनका पवित्र अवतरण हुआ। लगभग बारह या चौदह वर्ष की आयु तक बाल–क्रीड़ा करते हुए घर पर रहे। उसके बाद तीव्र वैराग्य के भावों से प्रेरित होकर घर से निकल पड़े और कुछ दिन साधु समुदाय के अन्दर घूमते हुए निर्जन वनों में भ्रमण करने लगे। इसमें सब से बड़े आश्चर्य की बात यह थी कि जहाँ–जहाँ पर कोई पहुँच वाला सन्त मिलता और मेरे गुरुदेव जी के स्वरूप को पहचानता वही गद्गद् कण्ठ होकर स्तुति करता और कृपा की भीख माँगता। इन पंक्तियों में मैं अपने गुरुदेव जी के जीवन चरित्र के विषय में कुछ लिखूँ, यह मेरा लक्ष्य नहीं है। फिर भी इतना कह देना तो आवश्यक ही है कि अपने बाल्यकाल में ही वह घटनायें घटीं जो सर्वसाधारण के जीवन में कभी हो नहीं सकतीं। चार साल की उम्र में माता–पिता को दिव्य ज्योति का अनुभव कराना, छ: साल की उम्र में वृद्धा पड़ोसिन जो मरणासन्नावस्था में थीं उसके सिर पर अपने कर–कमल का स्पर्श कर पूर्ण गति का वरदान देना, लगभग 9 वर्ष की अवस्था में अमृतसार के पास रामतलाई पर दर्शनार्थ आने के इच्छुक महात्माओं को स्वयं ही जाकर दर्शन देना, चौदह या पन्द्रह साल की उम्र में वनों को जाते हुए मुरादाबाद की तरफ से निकलते हुए किसी गाँव में किसी कुम्हार के लड़के के सिर पर कर स्पर्श करके दिव्यानुभूति कराना व खेचरी मुद्रा की पूर्णता का वरदान देना उनके जन्मजात सहज सामर्थ्य का पूर्ण परिचायक है। किन्तु फिर भी लोक–लीला का अनुसरण करते हुए जंगलों में विचरते रहे और अपनी इस वन–यात्रा में कई तपस्वी साधुओं पर परमानुग्रह कर उनको सफल मनोरथ बनाया और अपने आप थोड़े ही समय के अन्दर नेपाल हिमालय को चले गये। नेपाल की राजधानी काठमांडू से ऊपर जहाँ बागमती गंगा का उद्गम स्थान है, वहाँ से कुछ दूर चल कर किसी झार–खण्ड में रह कर घोर तपस्या का जीवन व्यतीत करते रहे। उस स्थान पर ही स्वयं सदाशिव स्वरूप एक महापुरुष आये जो मेरे श्री गुरुदेव जी को हिमालय के हिमाच्छादित प्रदेश में आकाश मार्ग से ले गये और एक स्थान पर छोड़ दिया। केवल दो एक बातें बतलाई। एक नर–भक्षक जड़ी दिखलाई और कहा कि यह जड़ी नर–भक्षक है, मनुष्य

को खा जाती है। दूसरी बात कि तुम यहाँ रहो, यह कह कर वह महापुरुष अपनी गुफा में जाकर के समाधिस्थ हो गये। उस स्थान से 6–6 मील 7–7 मील की दूरी पर कोई–कोई सिद्ध महापुरुष रहते थे। मेरे श्री गुरुदेव विचरते हुए उन लोगों से मिले। उन लोगों ने बताया, यह महापुरुष सदाशिव हैं और कई हजार वर्षों से यहाँ पर बैठे हुए हैं। यही सिद्धियों के दाता स्वयं महासिद्ध हैं और छः महीने में एक बार समाधि से उठते हैं। श्री प्रभुजी मेरे गुरुदेव अपने मुखार विन्द से यह बतलाते थे कि जब तक श्री महाप्रभु जी समाधि से उठे तब तक उनकी अपनी भी कई रोज की समाधि लग उठी थी। इसका अर्थ यही है–'गुरोस्तु मौनं व्याख्यानं शिष्यस्तुछिन्नसंशयाः।' अर्थात् गुरुदेव का चुपाचुपी का व्याख्यान हो और शिष्यों के संशय स्वतः ही नष्ट होते चले जायें। यही सद्गुरु तत्व की महत्ता है। सामर्थ्यवान गुरुदेव को बहुत उपदेश करने की आवश्यकता नहीं होती उनका संकल्प ही ''कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुम्'' की शक्ति रखता है। मेरे श्री गुरुदेव हिमालय के उन हिमाच्छादित शिखरों पर लगभग 12 वर्ष रहे और फिर संसार के पतित एवं वेदनापूर्ण दुःखी जीवों को देखकर उन दयासागर जी के मन में दया के भाव उमड़े और उन्हें संसार के आधिव्याधियों से पीड़ित दुःखी प्राणियों का पवित्र योग मार्ग का पथ प्रदर्शन करने के लिए श्री कृपानिधि जी भू–मण्डल पर लौट आये। श्री गुरुदेव जी अपने मुखारविन्द से यह कहा करते थे कि हिमालय के हिमाच्छादित शिखरों पर बैठ करके आधि–व्याधियों से पीड़ित दुःखाक्रान्त जीवों को देखा और उनके भले की भावना पूर्णरूपेण मन में जाग उठी, अतः पुनः संसार में आ करके प्राणी मात्र के भले के लिए पवित्र योग–मार्ग के प्रचार का आरम्भ कर दिया–

प्रज्ञाप्रासादमारुह्य अशोच्यः शोचतो जनान्।
भूमिष्ठानिव शैलस्थः सर्वान् प्राज्ञोऽनुपश्यति।।

अर्थात् प्रज्ञा–प्रासाद पर आरूढ़ हुए योगिराज संसार वालों को इस प्रकार देखते हैं जैसे पर्वत शिखर पर बैठे हुए व्यक्ति भूमि वालों को देख लिया करते हैं। ठीक इसी उदाहरण के प्रतीक बन कर मेरे श्री गुरुदेव भू–मण्डल पर आये और उन्होंने योग–प्रचार का पवित्र कार्य प्रारम्भ कर दिया। श्री प्रभुजी ने इस अवनि–मण्डल पर आकर तीन प्रकार के कार्य आरम्भ किये–

(1) **योग के सरल साधनों द्वारा रोग निवृत्ति**–इसमें भी सबसे विशेष बात यह थी, निज निर्मित साधनों का प्रचार। इनमें उनका एक प्रमुख साधन था 'जीवन तत्व साधन' इस जीवन तत्व साधन के अन्दर नौ क्रियायें हैं, जिनके करने से लोगों को अद्‌भुत व आश्चर्यजनक लाभ होता है। इस साधन के अन्दर सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह लगातार विधि–विधान पूर्वक करने से पेट में इस प्रकार की अग्नि पैदा करता है जिसको 'वृक' अग्नि कहते हैं। जिस प्रकार जंगली जानवर भेड़िया को हर समय भूख लगती रहती है, उसी प्रकार इन

साधनों को करने से मनुष्य को हर समय भूख लगती रहती है। पेट में एक अग्नि सी धधकती मालूम पड़ती है। वह अग्नि जब तक बन्द नहीं होती जब तक मनुष्य का स्वास्थ्य पूर्णरूपेण ठीक न हो जाये। इसके साथ–साथ इस साधन के अन्दर एक प्रमुख विशेषता यह है कि इस साधन को करते हुए बच्चे का ध्यान करने की एक विधि है जिससे मन की एकाग्रता बनकर स्वाभाविक लाभ होता है और बच्चा दीखने लगता है। इस बच्चे के देखने का आह्लाद हर समय बना रहता है और उससे उसके अधिकांश रोग की निवृत्ति हो जाती है। इसके साथ ही साथ दृढ़तर अभ्यास करने के बाद वही बच्चा श्रीकृष्ण आकृति में बदल जाता है, और साधक का आध्यात्म में प्रवेश हो जाता है। इस साधन का नाम है जीवन तत्व साधन।

'जीवन तत्व साधन' को हमने पुस्तक के रूप में प्रकाशित करा दिया है। इसका सभी को अवलोकन करना चाहिए।

इन क्रियाओं के लिए समय का विभाजन इस प्रकार रखना चाहिए–

1. सर्वोत्तान — केवल तीन बार, समय केवल अधिक से अधिक दो मिनट।
2. स्कन्ध चालन — समय पन्द्रह मिनट।
3. पादचालन — आठ मिनट।
4. नाभिचालन — पन्द्रह मिनट।
5. जानुप्रसार — दोनों ओर से तीन बार, समय लगभग चार मिनट।
6. बालमचलन — केवल एक मिनट।
7. बच्चे का ध्यान — पाँच मिनट।
8. नाड़ी संचालन — पन्द्रह मिनट।
9. उत्क्षेपण — केवल एक या दो मिनट।

इसी प्रकार यदि क्रियायें अधिक बढ़ानी हैं तो समय अधिक बढ़ाया जा सकता है। सभी प्रकार की बीमारियों में मेरे गुरुदेव के अपने मन से प्रकट किया हुआ यह जीवन तत्व साधन अमृत के समान परम लाभदायक है। इसमें भी बच्चे का ध्यान सब प्रकार से लोक व परलोक के लिए परम श्रेयस्कर है।

इसके अतिरिक्त राजयक्ष्मा के क्षीण रोगियों के लिए गुरुदेव जी ने अपने मन से अमर तत्व साधन को निकाला।

(2) **अमर तत्व साधन**–जिसमें केवल क्षीर समुद्र का ध्यान किया जाता है और हाथ–पैरों को इस प्रकार से चलाया जाता है जिस प्रकार हम समुद्र में तैर रहे हों। जो साधक श्री गुरुदेव की परम कृपा से अपने को क्षीर–सागर में तैरते हुए देखने लग जाते हैं, उनका राज–यक्ष्मारोग बहुत थोड़े दिन में दूर हो जाता है और उनको इतनी प्रसन्नता होती

है कि उसमें उनकी समस्त बीमारियाँ भाग जाती हैं और बहुत ही थोड़े दिन के अन्दर अपने आपको पूर्ण स्वस्थ देखने लगते हैं। प्रथम बार श्री गुरुदेव जी यह जीवन तत्व व अमर तत्व साधन आदि साधन को ही लोक-हितार्थ कराया करते थे किन्तु कुछ समय बाद नेति, धौति, न्यौली, बस्ति, गजकरणी आदि क्रियायें भी अधिकारी देखकर कराने लगे। इसके अतिरिक्त अन्य आसन, बन्ध, मुद्रायें और विभिन्न प्रकार की गुप्त क्रियाओं का शिक्षण भी आरम्भ कर दिया, यह सबसे बड़ा कार्य उन्होंने संसार में आकर किया।

(3) शक्तिपात दीक्षा—जो प्रत्येक व्यक्ति के लिए सम्भव नहीं हो सकता। हमारे शास्त्रों में योग का वर्णन दो प्रकार से मिलता है—सिद्धयोग और साधन योग। साधन योग में मनुष्य साधन करता-करता शनैः-शैनः अपने चरम लक्ष्य को प्राप्त कर लेता है और सिद्ध योग में सिद्धानुग्रह से ही मनुष्य का उत्थान हो जाता है और उसकी प्रगति इतनी ऊँची होती है कि जिसे वह अपने पुरुषार्थ से अनेक जन्म में भी नहीं प्राप्त कर सकता। सिद्धयोग के दाता पूर्ण सद्गुरु सिद्ध योगिराज ही हो सकते हैं और वही लोग शक्ति संचार भी कर सकते हैं। इस सिद्धयोग का प्रारम्भ भगवान सदाशिव से हुआ। पुराणों में हिमालय के घन-घोर जंगलों में होने वाले एक सिद्धाश्रम की चर्चा मिलती है, जिसमें भगवान् सदाशिव के शिष्य-प्रशिष्य योगाचार्यगण निवास करते हैं, यह सभी लोग महासिद्ध हैं और समय-समय पर संसार में व्यस्त गृहस्थ जनों को सन्मार्ग-दर्शन के लिए संसार में आया करते हैं। यह लोग सर्व समर्थ महापुरुष हैं। यही लोग शक्ति संचार कर सकते हैं। मेरे श्री गुरुदेव भी इन सबकी तरह एक अनादि महासिद्ध हैं। उन्होंने संसार में आकर शक्तिपात दीक्षा देनी प्रारम्भ की।

उनके कृपा-फल को प्राप्त कर कितने ही सैकड़ों की संख्या में साधु जंगलों में समाधि लगा रहे हैं, और तत्व विजयी होकर अपने शरीरों को एक सुन्दर नवयुवक के समान रखते हैं। कितने ही साधु षट्चक्रों का भेदन करके लोक-लोकान्तरों में गमन करने की शक्ति वाले हो गये और स्वायत्ततनु होकर हिमालय की कन्दराओं में निवास कर रहे हैं। मेरे गुरुदेव योग-योगेश्वर प्रभु श्री रामलाल जी महाराज सन् 1914 के लगभग हरिद्वार के कुम्भ मेले में प्रथम बार हिमालय से उतर कर आये। जिन जीवों के संस्कार उनके चरणारविन्द में उन्हें ले आते हैं या जो इस पवित्र योग-मार्ग के जिज्ञासु हैं उनको पवित्र योग-मार्ग का अनुयायी बनाकर चरम लक्ष्य की ओर अग्रसर करना, हरिद्वार कुम्भ मेले के समय उनके अपने संकल्प से ही उनके कुटुम्बी जनों में उन्हें पहिचाना और साधारण चर्चाओं में ही तर्क वितर्क करने लगे। महाराज जी आप कहीं पर किसी स्थिति में रहें, अब हम आपको अवश्य ही पहचान लेंगे। श्री महाराज जी ने उन लोगों से कहा कि भाई! हम साधू हैं तुम्हें हमसे आग्रह नहीं करना चाहिए। तुम अपना कार्य करो हम अपना कार्य करेंगे। किन्तु वे लोग नहीं बदले।

आग्रह करते ही रहे। इसी बीच में उन्होंने आश्चर्य देखा कि उनसे बात करते–करते ही श्री गुरुदेव जी वहीं अन्तर्धान हो गये। वे लोग लाख प्रयत्न करने पर भी उनका अन्वेषण नही कर सके। अपनी हठ–धर्मी का दुष्परिणाम पाकर उन सभी को महान दुःख हुआ। किन्तु उनको यह भी ज्ञान हो गया कि यह हमारे कुटुम्बी भाई बन्धु ही नहीं है किन्तु कोई सामर्थ्य वान् परम योगिराज है। श्री गुरुदेव जी की इस प्रभुता को जानकर लोगों ने अत्यन्त विनय की, जिसके फलस्वरूप श्री प्रभु जी वहीं प्रकट हो गये किन्तु एक बालक के रूप में। उस बालक को यह लोग नहीं पहचान सके। सोचते रहे यह कोई 15–16 साल का बालक है। कहीं कुम्भ मेले में आया होग, हमारे पास आकर बैठ गया है। किन्तु इन लोगों की अनभिज्ञता को देखकर उस बालक के रूप में छिपे हुए सर्व समर्थ सिद्धों के सिद्धेश्वर मेरे गुरुदेव उनसे मुस्करा कर कहने लगे कि भाई तुम किस चिन्ता में हो? किसका अन्वेषण कर रहे हो? उन लोगों ने कहा : ब्रह्मचारी जी! हमारे एक भाई साधु रूप में अभी–अभी यहाँ थे, किन्तु पता नहीं कहाँ चले गये हैं? हमने उनके साथ बड़ा आग्रह किया था, उस आग्रह का हमें भारी पश्चाताप है। जब वह लोग यह कह ही रहे थे तो उनको बड़ा आश्चर्य हुआ कि वहाँ कोई ब्रह्मचारी नहीं है, प्रत्युत योग योगेश्वर प्रभु श्री रामलाल जी महाराज हैं। इस अद्भुत घटना को देखकर सभी कुटुम्बी जनों ने निश्चय कर लिया कि यह केवल मात्र हमारे कुटुम्बी ही नहीं हैं, किन्तु इस आकृति में छिपे हुए कोई सर्वसमर्थ योगिराज हैं उसके बाद उन्होंने श्री प्रभुजी के चरणारविन्द में कोई हठ नहीं की और अपने–अपने घरों को लौट गये। कुछ लोगों ने श्री प्रभुजी को अमृतसर ले जाने का हठ किया श्री प्रभुजी की स्वयं अपनी इच्छा थी इसलिए वह हिमालय से उठकर के आये। उनके हठ को स्वीकार करके अमृतसर चले गये और वहाँ जाकर कुछ समय के लिए पण्डित वेष में रहने लगे। यह श्री प्रभु जी का गृहस्थ वेष था। इस वेष में उनको कोई पहचान नहीं सकता था। केवल अपने निवास स्थान पर रहते हुए जिस समय वन की बात किया करते थे। सुनने वाले समझते थे कि इतने घनघोर जगलों में सम्भवतः नहीं गये होंगे। अचानक इन्हीं दिनों में एक घटना घटी। अमृतसर में हाल दरवाजे से बाहर एक सराय है, जिसको सन्तराम की सराय कहते हैं। उसमें एक परम तेजस्वी देदीप्यमान मुख–मण्डल वाले एक महात्मा आकर समाधिस्थ होकर बैठ गये। वह बिल्कुल नग्न थे। तीन दिन व तीन रात्रि बिना कुछ खाये पिये समाधि स्थिति में वह महात्मा वहीं बैठे ही रहे। सारे शहर में उनकी ख्याति फैल गइ। दर्शकों की भारी भीड़ उनके पास एकत्र हो गई। श्री प्रभुजी के चरणारविन्द में जाकर गृहस्थी लोगों ने प्रार्थना की श्री महाराज जी! आप बड़े–बड़े जंगलों में हो आये हैं, किन्तु अभी तक आपको इस प्रकार के सिद्ध योगिराज जी नहीं मिले होंगे जैसे महात्मा सन्तराम की सराय में आकर बैठे हैं। वह तीन दिन से बिल्कुल निराहार हैं और पत्थर की मूर्ति की तरह से बैठे हैं न हिले हैं न डुले हैं। चलिए

।। श्री रामलाल प्रभवे नमः ।।

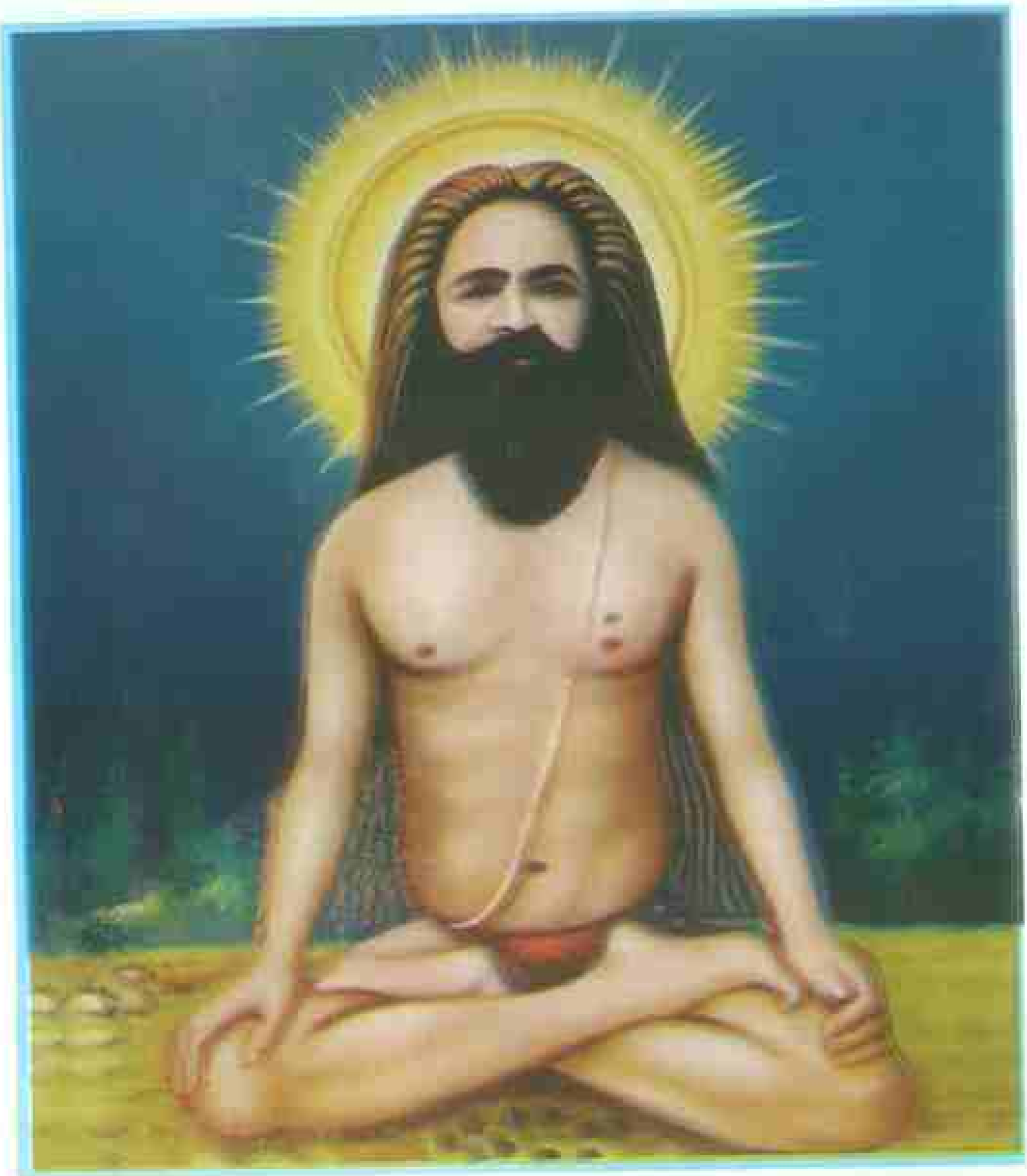

दादा गुरुदेव

योगेश्वर प्रभुश्री रामलालजी महाराज

आपको भी उनके दर्शन करा लावें। श्री गुरुदेव जी ने उत्तर दिया, भाई! हमें रहने दो, तुम्हीं दर्शन कर आओ। जब तीन रात्रि से बैठे हैं तो अच्छे तो हैं ही। किन्तु लोगों ने बड़ी भारी हठ की। लोगों के मन में यह भावना थी कि उस महात्मा को देखकर श्री गुरुदेव जी आश्चर्य चकित हो जायेंगे और कहेंगे कि हाँ, यह तो कोई अवश्य सिद्ध योगिराज हैं। किन्तु बात कुछ और ही थी। श्री प्रभु जी उन लोगों के आग्रह करने पर सन्त राम की सराय में गये। जहाँ वह महात्मा समाधि लगाकर बैठे हुए थे, धीरे-से उनके पीछे जाकर खड़े हो गये। लोगों को यह आश्चर्य हुआ कि और लोग सामने खड़े हैं और यह पीठ के पीछे खड़े हैं। थोड़ी ही देर में लोगों ने देखा कि महात्मा के शरीर में एक कम्पन पैदा हुआ। उस कम्पन के साथ उनके प्राण-कोष ब्रह्माण्ड से नीचे आ गये। महात्मा सचेत होकर जाग उठे और बड़ी तीव्रता के साथ खड़े होकर परम करुणार्णव मेरे श्री गुरुदेव जी के चरणारविन्द में गिर पड़े और चरणों से लिपट गये। महात्मा इतने रोये कि श्री प्रभुजी के बहुत समझाने पर भी उनके आँसू बन्द नहीं होते थे। श्री प्रभुजी ने उनको दोनों हाथों से उठाकर कण्ठ से लगा लिया और सिर पर हाथ रख आशीर्वाद देते हुए कहा—बेटा! रोते क्यों हो? मैंने ही तुमको शतपथ से बुलाया है तुम्हारी समाधि अपूर्ण थी, आज से वह पूर्ण हो जायेगी औश्र तुम्हारी खेचरी मुद्रा सिद्ध हो जायेगी। आकाश-गमन आदि सब ठीक हो जायेगा। महात्मा ने बड़ी कठिनता से श्री प्रभुजी से हाथ जोड़ कर प्रार्थना की। प्रभो! हे सर्वशान्तिमान्! मेरे रोने का केवल एक ही कारण है। मैं आपका मन्द बालक हूँ। तीन दिन तीन रात मेरी कठोर परीक्षा के बाद आपने मुझे दर्शन दिये हैं। मैं तड़पता रहा चरणारविन्दों के दर्शन के लिए? किन्तु आपके चरणारविन्द में बहुत से स्त्री पुरुषों का जमघट होने के कारण मैं नहीं आ सका और आप दर्शन देने के लिए नहीं आये। आज मेरा यह शुभ दिन है। पता नहीं मेरे कौन से पुण्य प्रारब्ध से प्राणिमात्र के अन्तर्द्राष्टा श्री प्रभुजी! आपने मुझे आकर कृतार्थ किया है। श्री प्रभुजी ने उस महात्मा को कुछ समय अपने पास रखकार हिमालय भेज दिया। जो लोग श्री प्रभुजी के साथ सन्तराम की सराय में गये थे, उनके आश्चर्य का तो कोई ठिकाना ही नहीं रहा। वह लोग भली प्रकार जान गये, इस विप्र वेष में छिपे यह अवश्य कोई सर्वसमर्थ महापुरुष हैं। यह पहली घटना थी जिससे कुछ सर्व साधारण लोग मेरे गुरुदेव के स्वरूप को कुछ-कुछ समझने लगे। यहाँ से ही शक्तिपात और सब प्रकार के योग प्रचार का कार्य प्रारम्भ हुआ। मेरे गुरुदेव ने इस बीच में क्या-क्या कार्य किया, वह शैनः-शनैः इस पत्र में प्रकाशित होता रहेगा जिससे पाठकगण समझते रहें कि सद्गुरुदेव कौन होता है और उनके कार्य किस प्रकार के हुआ करते हैं।

समाधि से तात्पर्य देहात्म बुद्धि से परे होता है। देह का आत्मा से तादात्म्य न होना पूर्व निश्चित है।

सम्पादकीय–

परम गुरुदेव श्री प्रभु रामलाल जी महाराज का पावन प्राकट्य दिवस

आचार्य (डा.) दासलाल ब्रह्मचारी

ईश्वर सर्वव्यापक और अनादि है। वह सृष्टि का सर्वप्रथम गुरु है। योग दर्शन में पतंजलिदेव जी महाराज ने **'सः पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्'** कहकर ईश्वर को सृष्टि का प्रथम गुरु कहा है। तीनों काल में विद्यमान रहने के कारण उनकी सत्ता अविच्छिन्न रूप से विद्यमान रहती है। वही ईश्वर समय–समय पर सगुण रूप में आकर प्रकट होते हैं और भक्तों की रक्षा तथा दुष्टों का संहार करते हैं–जैसा कि भगवान ने गीता के चौथे अध्याय में घोषणा की है। योग रूपी धर्म की स्थापना समय–समय पर प्रकट होकर करते रहते हैं। ईश्वर की भांति महायोगियों का चरित्र भी अलौकिक होता है, उनके चरित्र व इतिहास को जानना असंभव होता है। ऐसे योगी किसी भी स्थान पर, किसी भी समय प्रकट होकर अपना अभीष्ट कार्य किया करते हैं। उनका जन्म और कर्म मानुषी बुद्धि के द्वारा नहीं समझा जा सकता है। वे ईश्वर के तुल्य ही होते हैं। ऐसे ही एक महायोगी हुए हैं जो सृष्टि के अन्त तक हिमालय में अजर–अमर रहकर वास करते हैं तथा योग विधि से काय–निर्माण कर पृथ्वी पर आते रहते हैं जिनका परम पावन नाम महाप्रभु रामलाल है। वे एक ही समय में अनेक स्थानों पर काय–निर्माण से शरीर बनाकर योग विद्या के प्रचार–प्रसार के लिए प्रकट होते रहते हैं। ऐसे योगियों के काय–निर्माण से कार्य करने की बात उपनिषदों में वर्णित है।

''अचिन्त्य शक्तिमान योगी नाना रूपाणिधार येत्।'' अचिन्त्य शक्तियों से सम्पन्न योगी नाना रूपों तथा नाना नामों से रहकर अपना अभीष्ट कार्य करते रहते हैं। ऐसे योगी अपने भक्तों के अविद्यादि क्लेश रूप दुःख द्वन्द्वों को मिटा देते हैं। योग ध्यान की विधि द्वारा भक्तों को पूर्णतया योग मार्ग में लगाने के लिए तीव्र शक्तिपात कर कुण्डलिनी शक्ति को जागृत कर, योग के गूढ़ रहस्यों को प्रकट कर, उच्च भूमिकाओं में प्रवेश करा देते हैं।

सम्प्रज्ञात तथा असम्प्रज्ञात समाधि का बोध करा देते हैं।

आनन्दकन्द प्रभुजी बीसवीं सदी के सिद्ध योगियों में मूर्धन्य स्थान रखते हैं। जन्म से ही उनकी योग शक्तियों का परिचय जन सामान्य को मिलने लगा था। मध्य युग में नाथ योगियों के चमत्कारिक विभूतियों से लोगों में योग विद्या के प्रति विश्वास एवं आकर्षण हो गया था। इससे धर्म एवं आध्यात्म के दिव्य ज्ञान का प्रचार किया गया। महायोगी मत्स्येन्द्रनाथ, शिवा योगी गोरक्ष नाथ, भर्तृहरि, गोपीचन्द एवं चौरासी सिद्धों के दिव्य चमत्कारों की गाथा भारत में फैली हुई है। वस्तुत: योग ही शाश्वत् जीवन की प्राप्ति का मार्ग है। इसी से जीव अखण्ड शान्ति तथा जन्म मरण के क्रम को तोड़ सकता है।

श्री प्रभु रामलाल जी महाराज ने दिव्य शक्तिपात के द्वारा साधकों को योग की ऊँची–ऊँची भूमिकायें प्रदान की हैं। वहीं पर जन सामान्य के स्वास्थ्य एवं दीर्घायु के लिए दिव्य क्रियाओं को अपने मन से आविष्कार करके जीवन तत्व साधन के नाम से क्रियाओं का प्रचार–प्रसार जन सामान्य में किया है। ये क्रियायें स्वास्थ्य के साथ–साथ नाड़ी शोधन द्वारा मन की एकाग्रता को भी प्रदान करने वाली हैं जिसे हर व्यक्ति कर सकता है यहाँ तक रोगी व्यक्ति भी उनका अभ्यास करके धीरे–धीरे पूर्ण स्वस्थ हो जाता है। रोगों की निवृत्ति के लिये ये रामबाण हैं। कालान्तर में रोगी भी योग ध्यान में प्रवृत्त हो जाया करते हैं। भारतभूमि में शक्तिपात द्वारा योग विद्या को आगे बढ़ाने वाली संस्थायें बहुत ही कम हैं। पूर्ण योगिराज सिद्ध ही शक्तिपात का सामर्थ्य रखता है।

महाप्रभु रामलाल जी महाराज कल्पान्त जीवी अजर अमर सिद्ध हैं। योग पृथ्वी से लुप्त प्राय: होता देखकर बीसवीं शताब्दी में योग विद्या के अनेक रूपों से योग का प्रचार किया है। ये योग के साक्षात् स्वरुप हैं। उनके श्वास–श्वास में योग की विभूतियाँ प्रकट होती हैं। वे सर्वसमर्थ हैं। **''कर्तुमकर्तुमन्यथा कर्तुम्''** की शक्ति वाले हैं। अर्थात् अपनी इच्छा से ही किसी वस्तु का निर्माण कर लें, क्षण में किसी को सिद्ध बना दें तथा उनके विपरीत चलने पर नीचे गिरा दें यह सब सामर्थ्य उनमें विद्यमान हैं। सिद्धों की इच्छा के अनुरूप ही प्रकृति चलती है। पातञ्जल दर्शन में योग विभूतियों पर भाष्य लिखते हुए भगवान व्यास देव जी लिखते हैं कि योग सिद्ध योगियों की इच्छा के अनुसार प्रकृति उसी प्रकार से चलती है जिस प्रकार से सद्य: प्रसूत गौ अपने बछड़े के पीछे–पीछे चला करती है। श्री महाप्रभु जी ने कुछ दिन श्री सिद्ध गुफा में रहकर उस भूमि को पवित्र किया और उसे योग का हृदय बनाकर गये। इसकी रज योग विभूतियों से ओत–प्रोत है। सिद्ध पुरुष ही ऐसे योगियों के विषय में जान पाते हैं साधारण मनुष्य नहीं। उनके शिष्यों की लम्बी शृंखला में देवरहा बाबा प्रभृति

अनेक सिद्ध हैं जो हिमालय की कन्दराओं में अजर अमर हैं। श्री योगी हरीहरानन्द जी महाराज को श्री प्रभु जी ने एक क्षण में तत्त्व विजयी सिद्ध बना दिया जो आज भी शीशगिरी पहाड़ी पर समाधिस्थ हैं, ऐसा हमारे गुरुदेव योगीराज श्री चन्द्रमोहन जी हमें अपने श्री मुख से बतलाया करते थे।

श्री सिद्ध गुफा से ही अनुप्राणित होकर सैंकड़ों योग शाखायें देश–विदेश में चल रही हैं। हमारे गुरुदेव योगिराज जी ने अपने शिष्यों के मन में श्री प्रभु जी के अप्रतिम योग प्रभाव को स्थापित किया है इसी कारण से उनके शिष्य प्रभुजी को सदाशिव स्वरूप मान कर उनकी पूजा व ध्यान करते हैं तथा सफल मनोरथ होते हैं।

आपका अवतरण पंजाब प्रान्त के अमृतसर शहर में स्वनाम धन्य ज्योतिर्विद पं. गण्डाराम जी के घर में सन् 1888 में श्री राम नवमी के पावन पर्व में हुआ। श्री माताजी का नाम भागवन्ती देवी हुआ। आप के जन्म कुण्डली को देखकर ही आप के महायोगी होने का प्रमाण मिल गया था। आप के पूर्वज भी बहुत शक्ति सम्पन्न महापुरुष हो चुके हैं जो अपने संकल्प मात्र से मृत बालक को जीवित कर देना, मन्त्रोच्चारण से ही अग्नि प्रज्वलित कर देना, वर्षा करा देना आदि अलौकिक शक्तियों से सम्पन्न थे। इसी दिव्य कुल में प्रभुजी का अवतरण हुआ था। शैशवावस्था में ही आपके कार्य बड़े अलौकिक थे। चौदह वर्ष की आयु में ही विद्याध्ययन के बहाने से घर से निकल पड़े थे। सर्वप्रथम आप कुरुक्षेत्र पहुँचे। विद्याध्ययन के समय ही आपके कई चमत्कार विद्यार्थियों ने देखे।

एक दिन दोपहर विश्राम के समय आप विश्राम कर रहे थे तभी एक नाग इनके सिर पर छाया किये खड़ा था। कुछ देर बाद स्वतः ही गायब हो गया। वहाँ से आप काशी जी चले गये। उस समय में बहुत से तांत्रिक मान्त्रिकों से आप की टक्कर हुई। आपने सभी की शक्तियों को परास्त किया और कुरीतियो तथा व्यभिचार के केन्द्रों को नष्ट किया। सभी आप की यौगिक शक्तियों के सामने नतमस्तक हुए। कुछ वर्षों बाद आप श्री धाम वृन्दावन की ओर चले आये तथा घूमते–घूमते बरहन गाँव के लोगों पर कृपा बरसाते हुए संवाई गाँव पहुँच गये। यहाँ प्यारे लाल आदि आप के परम भक्त बन गये। आप के मुख से निकली वाणी अक्षरशः सत्य होती थी। आपके दिव्य सानिध्य को पाकर सभी कृतकृत्य हो गये। आप के निर्विघ्न समाधि की स्थिति के लिए उचित जगह के लिए ग्राम वासियों ने गुफा बना दी। वहाँ कुछ वर्ष श्री प्रभुजी रहे तत्पश्चात् एक दिन चुपके से प्रातःकाल ही गुफा के बन्द द्वार से अणिमा सिद्धि से निकल कर आकाश मार्ग से हिमालय की ओर चले गये। वहाँ नेपाल में अपने गुरुदेव श्री महाप्रभु सदाशिव के निकट कई वर्ष रहने के बाद उनकी आज्ञा से ही योग

विद्या के प्रसार के लिए पुनः मैदानों में आ गये। आपने संस्कारी भक्तों को योग मार्ग का उपदेश दिया। अपने भक्तों के आध्यात्मिक उन्नति के लिए जीवन तत्त्व की साधना के उपयोगी क्रियाओं का अन्वेषण करके भक्तों के मध्य प्रकाशित किया। अमर तत्त्व, फल तत्त्व आदि विशेष साधनों का प्रचार किया। इन क्रियाओं द्वारा जठराग्नि दीप्ति के साथ–साथ कुण्डलिनी जागरण के लिए शक्ति संचार की प्राचीन यौगिक आर्ष परम्परा को अक्षुण्ण बनाया। आपने कई सिद्धयोगी बनाये जिसमें ब्र. गोपालानन्द जी महाराज, श्री योगी मुल्खराज जी महाराज, गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन जी महाराज, श्री योगी नृसिंह मूर्ति जी, माता द्रोपदी देवी एवं ऋषिदेवी जी प्रमुख हुये। इन महान योगियों ने अध्यात्म योग व ध्यान योग का उपदेश अपने शिष्यों को दिया। सबसे अधिक प्रचार करने वालों में गुरुदेव योगिराज श्री चन्द्रमोहन जी महाराज का नाम सर्वोपरि आता है। आप सच्चे अर्थों में श्रोत्रीय एवं ब्रह्मनिष्ठ योगी हुए जिनके लाखों शिष्य ध्यानयोग में दीक्षित होकर आत्म कल्याण के पथ पर अग्रसर हैं। सदेह न होने पर आज भी अपने साधकों का अज्ञान तिमिर दूर कर रहे हैं। श्री प्रभु जी की परम्परा के साधक भ्रमित नहीं रहते हैं। योग के वास्तविक स्वरूप को जानने वाले होते हैं। योग में तर्क व विवाद का कोई स्थान नहीं है। ध्यान जन्य ऋतम्भरा प्रज्ञा व विवेक ख्याति ही जन्म मरण के चक्र को छुड़ा देने वाली होती है। **'सिद्धयोग'** की परम्परा में यद्यपि सिद्धगुरुदेव सब कुछ स्वयं करने वाले होते हैं तथापि निमित्त मात्र से क्रिया योग की साधना का निरन्तर अभ्यास करते रहने की आज्ञा हमारे सद्गुरुदेव योगिराज जी की आज्ञा रही है। श्री प्रभु जी अपने भक्तों के लिए कल्पवृक्ष व कामधेनु के समान हैं सभी इच्छाओं को पूर्ण करने वाले हैं। साधक को चाहिए शुद्ध व निर्मल भाव से साधनारत रहे। श्री प्रभु जी अपने भक्तों के हृदय कमल पर सदा विराजमान रहते हैं। श्री सिद्ध गुफा संवाई धाम में इस वर्ष श्री राम नवमी पर्व योग महामेला के रूप में मार्च 28, 29 व 30 मार्च को धूमधाम से मनाया जा रहा है। उनके प्राकट्य दिवस के पावन अवसर पर उनके चरण–कमलों में सभी भक्तों का कोटि–कोटि नमन है।

''ॐ श्री रामलाल प्रभवे नमः''

श्रीमद्भागवत में योगपरिचर्चा

डा. विजय सिंह

भगवान श्रीकृष्ण ने उद्धव जी को सतसंग की महिमा तथा भक्तियोग की अनिवार्यता परमात्मा को सम्पूर्णता से प्राप्त करने का उपदेश दिया।

चौदहवें अध्याय में उद्धवजी ने पूछा–श्यामसुन्दर! आप कृपा करके मुझे बतलाइये कि मुमुक्षु पुरुष आपका किस रूप में और किस भाव से ध्यान करे।

भगवान श्रीकृष्ण ने कहा–उद्धव! जो न ऊँचा हो और न बहुत नीचा हो–ऐसे आसन पर शरीर को सीधा रखकर आराम से बैठ जायें, हाँथों को अपनी गोद में रख लें, दृष्टि अपनी नासिका के अग्रभाग पर (अर्थात् भ्रूमध्य में) जमावें। इसके बाद पूरक, कुम्भक और रेचक तथा विलोम से रेचक, कुम्भक, पूरक प्राणायामों द्वारा नाड़ियों का शोधन करें।

सम आसन आसीनः समकायो यथा सुखम्।
हस्तावुत्सङ्ग आधाय स्वनासाग्रकृतेक्षणः।।32।।
प्राणस्य शोधयेन्मार्गं पूरक कुम्भकरेचकैः।
विपर्ययेणापि शनैरभ्यसेन्निर्जितेन्द्रियः।।33।।

अ. 14 स्कं. 11

हृदय में कमलनालगत पतले सूत के समान ॐकार का चिन्तन करें प्राण के द्वारा उसे ऊपर ले जायें और उसमें घण्टानाद के समान स्वर (ध्वनि) स्थिर करें। उसका (घण्टा नाद) ताँता न टूटने पाये। इस प्रकार प्रतिदिन तीन समय दस–दस बार ॐकार सहित प्राणायाम का अभ्यास करें ऐसा अभ्यास करने से एक महीने के अन्दर ही प्राणवायु वश में हो जाता है।

हृदविच्छिन्नमोङ्कारं घण्टानादं बिसोर्णवत्।
प्राणेनोदीर्य तत्राथ पुनः संवेशयेत् स्वरम्।।34।।
एवं प्रणवसंयुक्तं प्राणमेव समभ्यसेत्।
दशकृत्वस्त्रिषवणं मासादर्वाग् जितानिलः।।35।।

इसके बाद ऐसा चिन्तन करें कि हृदय एक कमल है (धारणा), वह शरीर के भीतर इस प्रकार स्थित है मानो उसकी डंडी ऊपर है और मुख नीचे की ओर। अब ध्यान करना चाहिए कि उसका मुख ऊपर की ओर होकर खिल गया है उसके आठ दल (पंखुड़ियाँ) हैं और उनके बीचोबीच पीली–पीली अति सुकुमार कर्णिका है। कर्णिका पर क्रमशः सूर्य, चन्द्रमा और अग्नि का न्यास करना चाहिए। तदनन्तर अग्नि के अन्दर मेरे इस रूप का स्मरण करना चाहिए। मेरा यह स्वरूप ध्यान के लिये बड़ा ही मंगलमय है।

हृत्पुण्डरीकमन्तः स्थमूर्ध्वनालमधोमुखम्।
ध्यात्वोर्ध्वमुखमुन्निद्रमष्टपत्रं सकर्णिकम्।।36।।
कर्णिकायां न्यसेत् सूर्यसोमाग्निनुत्तरोत्तरम्।
वह्निमध्ये स्मरेद् रूपं ममैतद् ध्यानमङ्गलम।।37।।

अ. 14 स्कं. 11

मेरा मुखकमल अत्यन्त प्रफुल्लित है। रोम–रोम से शान्ति बरस रही है। सुन्दर गरदन है। मन्द–मन्द मुसकान मुख पर छायी है। हाथों में शंख, गदा, चक्र और पद्म धारण किये हुये हैं। सारा स्वरूप मेरा हृदय हारी है। उद्धव! मेरे इस सुकुमार रूप का ध्यान करना चाहिए और मन को एक एक अंग में लगाना चाहिए। बुद्धिमान पुरुष को अपने मन को विषयों से खींच कर बुद्धिरूप सारथी की सहायता से मुझमें ही लगा दें चाहे मेरे किसी भी अंग में क्यों न लगे।

जब सारे शरीर का ध्यान होने लगे तब अपने चित्त को खींचकर एक स्थान में स्थिर करें और अन्य अंगों का चिन्तन न करके मुस्कान युक्त मुख का ही ध्यान करें। जब चित्त मुखारविन्द में ठहर जाये, तब उसे वहाँ से उठाकर आकाश में स्थिर करें। अन्त में सब त्यागकर मेरे आत्मतेज में आरूढ़ हो जाये।

जब इस प्रकार चित्त समाहित हो जाता है, तब जैसे एक ज्योति दूसरे ज्योति से मिलकर एक हो जाती है, वैसे ही अपने में मुझे और मुझ सर्वात्मा में अपने को अनुभव करने लगता है।

जो योगी इस प्रकार तीव्र ध्यान से मुझमें ही अपने चित्त को संयम करता है, उसके चित्त से वस्तु की अनेकता वाला ज्ञान व कर्मों का भ्रम शीघ्र ही निवृत्त हो जाता है।

एवं समाहितमतिर्मामिवात्मानमात्मनि।
विचष्टे मयि सर्वात्मन् ज्योतिज्योर्तितिषि संयुतम।।45।।

ध्यानेनेत्थं सुतीव्रेण युञ्जतो योगिनो मनः।
संयास्यत्याशु निर्वाणं द्रव्यज्ञानक्रिया भ्रमः।।46।।

अ. 14 स्क. 11

अब पन्द्रहवें अध्याय में भगवान कृष्ण उपरोक्त प्रकार से समाहित चित्त वाले पुरुषों को भिन्न-भिन्न सिद्धियाँ अनुभव में आती हैं उनके नाम और लक्षण बतलाते हैं। इस अध्याय को साधन-सिद्धयोग कहा जाये तो समीचीन होगा। अतः इस अध्याय को विस्तार से ही उल्लेख करने का प्रयास कर रहा हूँ।

भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं—प्रिय उद्धव! जब साधक इन्द्रिय, प्राण और मन को अपने वश में करके अपना चित्त मुझमें लगाने लगता है (धारणा) तब उसके सन्मुख बहुत सी सिद्धियाँ उपस्थित होती हैं।

जितेन्द्रियस्य युक्तस्य जितश्वाससस्य योगिनः।
मयि धारयतश्चेत उपतिष्ठन्ति सिद्धयः।।1।।

उद्धवजी ने पूछा—अच्युत! आप ही योगियों को सिद्धियाँ देते हैं, उनकी संख्या कितनी है और कौन सी धारणा करने से कौन-सी सिद्धि मिलती है। कृपया हमें बताइये।

कया धारणया कास्वित् कथंस्वित् सिद्धिरच्युत।
कति वा सिद्धयो ब्रूहि योगिनां सिद्धिदो भवान।।2।।

भगवान श्रीकृष्ण ने कहा—प्रिय उद्धव! धारणायोग के पारगामी योगियों ने अठारह प्रकार की सिद्धियाँ बतायी हैं। उनमें आठ सिद्धियाँ प्रधान रूप से मुझमें ही रहती हैं। दस और सत्त्वगुण के विकास से भी मिलती हैं।

सिद्धयोऽष्टादश प्रोक्ता धारणायोगपारगैः।
तासामष्टौ मत्प्रधाना दशैव गुणहेतवः।।3।।

अणिमा, महिमा और लघिमा शरीर की सिद्धियाँ हैं। प्राप्ति ऐन्द्रिक सिद्धि। लौकिक व पारलौकिक पदार्थों का इच्छानुसार अनुभव 'प्राकाम्य' है। माया को इच्छानुसार संचालित करना 'ईशिता' नाम की सिद्धि है। विषयों में रहकर उससे अलेप असंग रहना 'वसिता'। जिस-जिस सुख की कामना करें उसकी परमसीमा तक पहुँच जाना 'कामावसायिता' नाम की आठवीं सिद्धि है।

इन मुख्य सिद्धियों के अतिरिक्त भूख-प्यास से रहित होना, दूर दर्शन, दूर श्रवण, मन के साथ ही शरीर का उस जगह पहुँच जाना। इच्छारूप धारी होना, परकाय प्रवेश, इच्छा से

शरीर त्याग, देव क्रीड़ाओं का दर्शन, संकल्प की सिद्धि, बिना ननुनच के आज्ञापालन होना ये दस सिद्धियाँ सत्वगुण के विशेष विकास से होती हैं। इसके अतिरिक्त पाँच सिद्धियाँ, त्रिकालज्ञता, द्वन्द्वों से पराभूत न होना, दूसरे के मन की बात जानलेना, विष आदि को स्तम्भित कर देना और किसी से पराजित न होना भी योगियों को प्राप्त होती है।

अणिमा महिमा मूर्तेर्लघिमा प्राप्तिरिन्द्रियैः।
प्राकाम्यं श्रुतदृष्टेषु शक्तिप्रेरणमीशिता।।4।।
गुणेष्वसङ्गो वसिता यत्कामस्तदवस्यति।
एता मे सिद्धयः सौम्य अष्टावौत्पत्तिका मता।।5।।
अनूर्मिमत्त्वं देहेऽस्मिन् दूरश्रवण दर्शनम्।
मनोजवः कामरूपं परकायप्रवेशनम्।।6।।
स्वच्छन्दमृत्युर्देवानां सहक्रीडानुदर्शनम्।
यथासङ्कल्पसंसिद्धिराज्ञाप्रति हता गतिः।।7।।
त्रिकालज्ञत्वमद्वन्द्वं पराचित्ताद्यभिज्ञता।
अग्न्यर्काम्बुविषादीनां प्रतिष्टम्भोऽपराजयः।।8।।

अ. 15 स्कं. 11

आचार्य श्री दासलाल जी महाराज
के
आगामी कार्यक्रम

(1) 13 अप्रैल 2023 से 16 अप्रैल 2023 जयपुर

पता– अग्रवाल कम्यूनिटी सोसाइटी
सैक्टर 5, मानसरोवर नगर, जयपुर

(2) 27 अप्रैल 2023 से टोडरपुर व कछवा (बजहा) का योग प्रचार

27 अप्रैल 2023 को टोडरपुर
तथा
28 अप्रैल 2023 से 30 अप्रैल 2023 तक बजहा (कछवा)
जिला मीरपुर

"ॐ रामलाल प्रभवे नमः"

लीला धारी की लीलाऐं

—जगदीश राए बंसल "अधम" 9212434003 एवं 011—35699425

गतांक से आगे—

श्री सिद्ध शिरोमणी, सर्व समर्थ्य, विश्व नियन्ता गुरुदेव भगवान श्री चन्द्रमोहन जी महाराज अपनी भव्य लेखनी से अवगत कराते रहे हैं कि मेरे गुरुदेव (हमारे आप के दादा गुरुदेव) योग योगेश्वर, कल्याण धन, सिद्धे, के सम्राट प्रभु श्री रामलाल जी महाराज की दिव्य एवं चमत्कारी लीलाओं को जिन्हें मैंने स्वयं देखा है—जाना है, जन कल्याणार्थ लेखनीबद्ध प्रकाशित करने का प्रयास है। इन अद्‌भुत कृपाओं का पठन—पाठन करने वाले श्रद्धालुओं की आशुतोष—करुणा सागर श्री प्रभुजी के श्री चरण कमलों में निष्ठा दृढ़ होगी तथा वे कल्याण को प्राप्त होंगे।

कृपा लीलाऐं

अवधूतानी शलमा पर कृपा—*(श्री प्रभु रामलाल जी महाराज के अपने शब्दों में)*

हरिद्वार पहुँचने से पहले एक अवधूतानी जिला अल्मोड़ा की, अयोध्या में सरयु तट पर बैठी रो रही थी। मैंने पूछा कहो देवी क्यों रो रही हो? उसने कहा मैं साधुओं को रो रही हूँ। तब मैंने पूछा—कि साधुओं ने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है? उसने कहा कि मैं एक गृहस्थी योगाभ्यासी महात्मा की सेवा करती थी। उनकी कृपा से मुझे अन्तरानुभूति हुई। किन्तु उन्हीं दिनों एक साधु महात्मा आँखों पर पत्थर धरे मिले। मैंने उनसे कहा, हे महात्मन् ये आँखों पर पत्थर कैसे धरे हैं? तब महात्मा बोले इनको पत्थर मत कहो, ये तो साक्षात शालिग्राम हैं। इनको आँखों पर रखने से हर समय भगवान के दर्शन होते रहते हैं। मैंने कहा, महाराज मुझे भी दर्शन कराओ। महात्मा ने कहा—तुम ऐसे ही दर्शन चाहती हो? सेवा बिना मेवा नहीं मिलती। तब महात्मा की आज्ञा पाकर मैंने तीव्र लालसा से उसकी तीव्रतम सेवा की। वर्षों तक महात्मा मेरा समय खराब करता रहा। परन्तु मैंने पुनः प्रार्थना की, तो बोले ऐसे थोड़े ही दर्शन होंगे, सामग्री लाओ, हम यज्ञ करेंगे। मैंने यज्ञ भी करवा दिया। फिर महात्मा बोले—एक रेशमी रूमाल लाओ। वे भी ला दिया। महात्मा ने रूमाल लिया शंख बजाया। अपनी गठरी खोल कर एक डिब्बा निकाला। डिब्बा खोलकर एक रेशमी कपड़े की चार गाँठें खोलीं।

बोले–तुम सीताराम करते जाओ। तब अपने माला खटखटाकर एक पत्थर का बट्टा निकाला और रेशमी रूमाल पर रख दिया। फिर महात्मा नाचने–कूदने लगा। जय बोलेन लगा व कहने लगा–करो दर्शन भगवान के, साक्षात् भगवान प्रकट हो गए। मैंने कहा–मुझे साक्षात भगवान के चतुर्भुज रूप के दर्शन कराइये। मेरा ऐसे कहते ही महात्मा बिगड़ पड़े। बोले अरी! तू क्या बकती है? हम बड़े परिश्रम से नेपाल गए, तब कठिनता से मुक्ति धाम गए, बर्फ–भूख–प्यास सहन किया, तब कहीं अस्सी वर्ष की अवस्था में शालिग्राम का दर्शन कर पाया। साक्षात् भगवान के दर्शन न हमें हुए, न हमारे गुरु को हुए, न हमारे दादा गुरू को। तब मैं निराश हो कर वहाँ से चली आई। मेरे वह योगाभ्यासी महात्मा इस सधू ने छुड़ा दिए, नहीं तो मैं आज तक अनेक पुरुषों को दर्शन करा देती।

फिर हमें एक वेदान्ती महात्मा मिले। उसने हमारा सिर मूंड़ लिया और अपना चेली बना लिया। जब उसने सिर्फ, ''अहंब्रह्मास्मि'' कहना सिखला दिया और मिथ्या भाषण, इस लिए रो रही हूँ। मैंने (श्री प्रभु जी) कहा जो तूने पत्थर बतलाए, उसमें इस महात्मा की गलती है। उसको उसमें से शालिग्राम की मूर्ति निकालनी नही आती थी। तब वह (शलमा) बोली–यदि आप कोई ऐसा साधन जानते हो तो हमें दर्शन करा दीजिए, मैं आपकी तन–मन–धन से सेवा करूँगी। तब श्री प्रभु जी को उस पर दया आ गई। बोले–तू रो मत, मुझे सेवा की कोई आवश्यकता नहीं है। फिर करुणानिधि श्री प्रभु जी ने उसे महायोग की दीक्षा प्रदान कर, उस पर शक्तिपात कर दिया। उसी दिन से शलमा को दिव्य दर्शन प्रारम्भ हो गए। तब हम उसे एक मन्दिर में ले गए, वहाँ श्री राम–लक्ष्मण सीता की मूर्ति दिखलाई और विधि बतलाई। तब से सलमा को दिन दूनी रात चौगुनी दिव्यानुभूति होने लग गई। तब अपनी हम घूम–फिर के आगे चल दिए।

अवधूतानी शलमा की उपलब्धियाँ–एक बार ने ध्यान योग से देखा कि प्रभु ने हरिद्वार कुम्भ मेला में आने वाले हैं, तो दर्शन करने की तीव्र लालसा जाग उठी। जब हम घूम कर हरिद्वार आए, तब हमें बहुत सी स्त्री पात्र लिए और आप चुटमुट बनी हुई, आन कर हमारे पाँव में गिर पड़ीं। मैंने पहचाना भी नहीं और वे स्तुति करने लगीं। मगर अब शलमा का वह रूप नहीं था जिसको श्री प्रभु जी ने अवधूतासी के रूप में अयोध्या में देखा था। अन्तर्यामी जी सब कुछ जानते हुए भी उससे पूछा–देवी तुम कौन हो? तब उसने कहा कि महाराज मैं वही चरणों की दासी हूँ, अवधूतानी शलमा, जिसको आप अयोध्या में कृर्ताय करके चले गए थे। मैंने विष्णु भगवान के दर्शन के लिए भटकती फिरती थी तथा रात दिन रोती रहती थी। अब मैं जिस लोक में जाना चाहती हूँ, वहाँ ही आप ले जाया करते हैं। अब सैंकड़ों हमारी

चेलियाँ आप ही को स्मरण करती हैं। अब मैं शिवलोक, इन्द्रलोक, व किसी लोक में जाना होता है, वहाँ ही आप ले जाया करते हैं। मैं आपसे विनय करती हूँ कि अमुक–अमुक शिष्या को मैं साथ ले जाना चाहती हूँ, आप साथ ले चलते हैं।

एक दिन मैं आपके साथ इन्द्रपुरी को गई। वहाँ के भोग्य पदार्थ भोगने लगी, तो मैंने देखा कि इन्द्रदेव जी एक अत्यन्त सुन्दर पुष्पक विमान में बैठ कर कहीं जाने लगे, तो मैं आप के पीछे पड़ गई कि इस विमान पर मुझे चढ़ना है। तब आपने वही पुष्पक विमान इन्द्रदेव से लेकर हमें चढ़ा दिया। ऐसे मेरे मन के मनोरथ आप पूरे करते हैं। एक दिन मैं और मेरी शिष्या एक जंगल में जा रही थी। वहाँ हमें प्यास लगी। एक कूप में से बिन्दा मेरी शिष्या पानी लेने गई। तब सब रोने लगे। मैंने आपका ध्यान किया कि यह लड़की तुम्हारी जा रही है। आपने कूप में से उसकी भुजा पकड़ कर बाहिर निकाल दिया। ऐसे–ऐसे लोक परलोक के हमारे कार्य आप करते रहे हैं, तो अब दासी को क्यों विस्मरण किया। तब मैंने कहा–नहीं अवधूतानी नहीं। तब उसने कहा, आप हमारे आसन पर चलें। हमने कहा कि कल हम तुम्हारे आसन पर आऐंगे, कहकर हम चल दिए।

भैरव चक्र तोड़ना–

हम हरिद्वार कुम्भ से काशी जी आ गए। काशी जी में एक ''शरीफ गुण्डा'' नामक पण्डा हमारा सेवक बन गया। कुछ दिनों पश्चात् उस पण्डा सहित हम 'गया' आ गए। गया जी में हमारे उस पण्डा भक्त का स्थान था, वहीं रहने लगे। एक दिन श्री प्रभु जी गद्दी पर विराजमान थे। पण्डा भक्त श्री चरणों में बैठा हुआ था। उसी समय एक वाम मार्गी ब्राह्मण तिलक लगाए पण्डा से मिलने आया। उसे देखते ही पण्डा भक्त भय से कांपता हुआ साष्टांग प्रणाम कर, उसे आसन देकर हाथ जोड़े खड़ा ही रहा। थोड़ी देर बातचीत करके वाममार्गी चला गया। श्री प्रभु जी महाराज के पूछने पर पाण्डा भक्त ने बतलाया–महाराज जी ये यहाँ वाममार्गी के प्रधान हैं। यदि किसी से इनकी आज्ञा का उल्लंघन हो जाए तो ये मन्त्रों द्वारा उसके अंग–भंग कर देते हैं। इस कारण मैं इनसे इतना डरता हूँ।

साधु आचरण के विपरीत, उपरोक्त वचन सुनकर, महासिद्ध श्री प्रभु जी महाराज ने फरमाया–''साधना सम्पन्न साधु अथवा ब्राह्मणों का बस्तियों में विचरण तो जीवों के हितार्थ होता है, किन्तु क्या ये इतने तमोगुणी हैं? क्या ये भैरवी चक्र भी लगाता है?'' पाण्डा भक्त बोला–यहाँ भैरवी चक्र भी लगता है और ये ही उसके प्रधान हैं। तब श्री प्रभुजी ने पूछा–''अब भैरवी चक्र किस दिन का है और कहाँ लगेगा? भयभीत भक्त श्री प्रभु जी से अभयदान प्राप्त

कर पूरी-पूरी जानकारी ले आया। श्री प्रभुजी वाममार्गियों को धर्माचरण विरुद्ध देख कर, उन्हें धर्ममार्ग पर लाने की जहाँ-तहाँ कृपा किया करते हैं।

जिस दिन भैरवी चक्र होना था, उस रात्री को श्री प्रभुजी अपनी योग शक्ति से उस मकान में प्रविष्ट हुए। श्री प्रभु जी ने देखा-बीच में जमीन पर कपाल के एक खप्पर में बड़ा दीपक जल रहा था। दीपक के चारों ओर बहुत से स्त्री पुरुष गोल दायरा बनाए हुए पाँच मकारों का सेवन कर रहे थे। श्री प्रभु जी ने अपनी योग शक्ति का प्रयोग किया जिससे दीपक सहित खप्पर उड़कर अपने आप योग योगेश्वर श्री प्रभु जी के हाथ में चला आया। वाम मार्ग के नियमानुसार भैरवी चक्र के बीच में रखा हुआ दीपक, यदि किसी कारण से और जगह चला जाये तो जब तक वह दीपक लौट कर बीच में न आ जाए तब तक मुद्रावस्थित स्त्री पुरुष कठपुतलियों की तरह सतम्भित रहते हैं। इस कारण सभी की ऐसी हालत हो गई कि कोई हिल भी नहीं सका।

काल चक्र, युग चक्र और जग चक्र को एक साथ चलाने वाले, जगत नियन्ता, सर्वाधार, अखिल कोटि ब्रह्माण्ड नायक श्री प्रभु जी रामलाल जी महाराज के अद्भुत चमत्कार को देख कर उस प्रधान सहित सब वाम मार्गियों ने अपने अपराध के लिए क्षमा याचना की। तब दया सिन्धु श्री प्रभु जी महाराज ने भविष्य में कभी भैरवी चक्र न लगाने तथा किसी को कष्ट न देने की प्रतिज्ञा करवा कर खप्पर को दीपक सहित लौटा कर उनको क्षमा कर दिया। तब भैरवी चक्र को तोड़कर सब वाममार्गी श्री प्रभु जी के चरण कमलों में प्रणाम कर अपने अपने घर को चले गए। श्री प्रभु जी ''गया'' से चल कर नर्मदा की परिक्रमा के लिए बीस पच्चीस भक्तों सहित चल दिए।

प्रेत ग्रस्त मन्दिर में रौनक जगाई-

अन्य तीर्थ स्थानों से होते हुए श्री प्रभुजी ने परिक्रमा मार्ग में नर्मदा तट के ऊँचे टीले पर एक सुन्दर मन्दिर देखा। भीतर जाने पर कोई व्यक्ति नहीं मिला। श्री प्रभु जी ने सुयोग्य एवं एकान्त स्थान देख कर वहीं डेरा लगवा लिया। इतने में सांय काल के समय मन्दिर का एक मुनीम आकर श्री प्रभु जी के श्री चरणों में प्रार्थना किया कि ''महाराज जी यहाँ से आप शीघ्र अपना डेरा उठवा लीजिए। क्योंकि यहाँ जाने अनजाने में कोई आदमी रात को सो जाये तो प्रातः मरा हुआ ही मिलता है। फिर गाँव से चन्दा इकट्ठा करके उस मुर्दे को जलाते हैं। आपके साथ इतने आदमी मर जाने पर गरीब गाँव वालों को इतनी लकड़ियाँ एकत्रित करना मुश्किल हो जाएगा। इसलिए हम लोगों पर कृपा कर अपना डेरा और कहीं बदल

लीजिए। क्योंकि पहले भी कई बार ऐसी घटनाएँ हो चुकी हैं।'' तब तारण हार, शक्तिदाता, व्याधी विनाशक श्री प्रभु जी ने कहा–''हमारे साथ ऐसी कोई बात नहीं हो सकती। तुम निश्चित हो कर चले जाओ।'' मुनीम ने बहुत प्रार्थना की मगर हार कर चला गया और गाँव में जा कर सबसे कह दिया। वह रात श्री महाराज जी ने मण्डली सहित बड़े आराम से व्यतीत की। प्रातःकाल वह मुनीम कई आदमियों के साथ आकर, सभी को जीवित देख कर बहुत आश्चर्यान्वित हुआ और श्री प्रभु जी के कमल चरणों में गिरकर प्रार्थना करने लगा–''महाराज आप कोई महापुरुष हैं, क्योंकि यह पहली घटना है कि इस मन्दिर में रात भर कोई रह जाए और न मरे।'' तब श्री महाराज जी मुस्का दिए, बोले–''यह सब प्रभु जी की कृपा है।''

इस मन्दिर में पूजा न होने का कारण पूछने पर मुनीम ने कहा–''महाराज! यह मन्दिर बहुत रुपया खर्च करके कलकत्ता के एक मारवाड़ी सेठ ने बनवाया था। पता नहीं इसमें क्या दोष रह गया जिससे रात में ठहरने वाले मर जाते हैं और जो यहाँ पूजा करता है वह एक–दो दिन में अवश्य मर जाता है। आज तक जितने पुजारी आए सब मर गए। अब कोई नहीं आता......।'' भव भयहारी श्री प्रभु जी ने मन्दिर खुलवा कर स्वयं पूजा करने लगे। चार पाँच दिन इस चमत्कार को देख कर गाँव वाले श्री चरणों में उमड़ पड़े एवं मुनीम ने तार देकर कलकत्ता से सेठ को बुला लिया। सेठ जी श्री चरणों में अपना मस्तक रख बोले–''महाराज जी मैं बहुत दुःखी था आज आपकी कृपा से मेरा दुख दूर हुआ। अब यह मन्दिर आपको भेंट करता हूँ, कृपया आप स्वीकार करें। श्री प्रभु जी ने फरमाया–''हमारा रहना तो यहाँ मुश्किल है, परन्तु इस मन्दिर का दोष अब दूर हो गया है, इसलिए पुजारी नियुक्त कर पूजा आदि कराओ।'' सेठ जी महाराज जी का सेवक बन गया भण्डारे करने लगा। श्री प्रभु जी का चमत्कार सुन–सुन कर दूर–दूर से सैंकड़ों श्रद्धालु दर्शनार्थ आने लगे। श्री प्रभु जी अपनी परिक्रमा पर आगे बढ़ गए।

(क्रमशः)

"ॐ श्री रामलाल प्रभवे नमः"

एक महत्त्वपूर्ण यथार्थ सत्य

—अन्तूराम यादव, तेलियरगंज, प्रयागराज

प्रातः स्मरणीय योग योगेश्वर अनन्त श्री सद्गुरुदेव भगवान के युगल कमलवत् चरणों में नमन करते हुए आप सभी आदरणीय भाई–बहनों के समक्ष एक यथार्थ सत्य पर प्रकाश डालने के साथ–साथ कुछ प्रार्थना के रूप में एक साधक के हृदय का उद्‌गार एवं उसका समर्पण भाव प्रस्तुत करना चाहता हूँ। अध्यात्म से जुड़े लोगों को यह भली प्रकार ज्ञात है कि साधना अथवा भक्ति में भाव ही प्रधान होता है। प्रस्तुत लेख का मुख्य उद्देश्य ही यही है कि सिद्धयोग के सभी विद्यार्थियों के मन में सद्गुरुदेव भगवान के प्रति समर्पण भाव कूट–कूट कर भर जाये। किसी कवि ने ठीक ही कहा है–

"भाव के भूखे हैं भगवान, भाव के भूखे हैं भगवान।
भाव नहीं तो कुछ भी नहीं है, लाख करो गुणगान।"
भाव के भूखे हैं भगवान ....

अब मुख्य विषय पर आते हैं। बीज के सच को, इसके यथार्थ को हम सभी जानते हैं। कंकरीली–पथरीली जमीन की तहों में दबा हुआ बीज, मौसम आने पर अंकुरित हुए बगैर नहीं रहता। यह बीजांकुर भले ही कितना कोमल और नाजुक हो, फिर भी बड़ी आसानी से उस कंकरीली–पथरीली जमीन को भेद कर खुली हवा और सूर्य के उजाले में अपने अस्तित्व की अमिट पहचान बनाता है।

ठीक यही स्थिति शिष्य के बीज–मंत्र की है। शिष्य की अन्तर्चेतना, उसकी चित्त–भूमि में यदि सद्गुरु द्वारा प्रदत्त मंत्र–बीज की उपस्थिति है तो समझ जाइए कि उसके आध्यात्मिक जीवन की सम्भावनाएँ भी हैं, इसमें कोई शंका की बात नहीं। फिर भले ही यह मंत्र–बीज चित्त की कितनी ही गहरी तहों या परतों में क्यों न दबा हुआ हो। कामना, वासना अथवा लालसाओं के कितने ही कुसंस्कार इसे क्यों न घेरे हुए हों, सही काल आने पर इसका अंकुरण सुनिश्चित है। इसी के साथ उसके उन कुसंस्कारों की कालिमा का मिटना भी अनिवार्य है जो इसे बाँधे हुए हैं। श्रीमद्‌भगवत् गीता के महानायक परमगुरु भगवान श्रीकृष्ण का वचन है–"न मे भक्तः प्रणश्यति" अर्थात् मेरे भक्त का कभी नाश नहीं होता–त्रिकाल सत्य है। सत्युग, त्रेता, द्वापर अथवा कलयुग के काल क्रम का इस पर कोई प्रभाव नहीं होता। सच्चा गुरु–भक्त, सच्चा शिष्य अपने सद्गुरु की कृपा से जीवन के परम

लक्ष्य को अवश्य ही पा लेता है।

अब आइए देखें एक साधक, एक गुरु–भक्त अपनी दी प्रार्थनाओं के रूप में अपने हृदय का उद्‌गार अपने सद्‌गुरु के समक्ष कैसे प्रस्तुत कर रहा है–

"**प्रार्थना–1**–हे गुरुदेव! हे सच्चिदानन्द स्वरूप, हे देवाधिदेव हम सब साधकों की यही कामना है–"असतो मा सद्‌गमय, तमसो मा ज्योतिर्गमय, मृत्योर्मा अमृतम् गमय।" हे दया सागर! हमें असत्य से हटाकर सत्य की ओर ले चलिए। अंधेरों से निकाल कर उजालों की तरफ ले चलिए। जो दुख, पीड़, संताप और भय है उससे हमें बचा कर परमानन्द, शान्ति और ज्ञान की ओर ले चलिए। हे गुरुदेव! हमारे हृदय में इतना प्रेम भर दें कि हमारा ध्यान, हमारी लगन, हमारी भक्ति आप के चरणों में हो। जैसे चकोर चन्द्र को देखता है और उसके आकर्षण में बँधा रहता है, जैसे कमल सूर्य को देख कर खिलते हैं, जैसे सूरज–मुखी का फूल सदैव सूर्य की तरफ मुँह करके खड़ा रहता है, जिधर सूर्य होता है उधर ही उसका मुख होता है, हे गुरुदेव! वैसे ही हमारा ध्यान निरन्तर आप की तरफ हो। आप की महिमा को देखते रहें और कभी तृप्त न हों। हे गुरुदेव! जिस तरह से बादल को देख कर मोर नाचता है वैसे ही आप की कृपाओं को यदा कर करके हमारे मन का मोर नाचता रहे। हर समय उत्सव मनाएँ, प्रसन्नता में झूमते रहें, आप के धन्यवाद के गीत गाते रहें। हे मेरे भगवान! जिस प्रकार मछली जल से अलग होकर तड़पती है। जो पल आप की याद के बिना गुजर जाये हमारे अन्दर तड़पन हो कि आपका ध्यान क्यों नहीं किया, आपका गुणगान क्यों नहीं गाया, और आप का नाम क्यों नहीं जपा। हे गुरुदेव! जैसे चातक स्वाती नक्षत्र की ओर सदा ध्यान लगा कर बैठा रहता है। चारों तरफ जमीन पर जल हो लेकिन उस जल को नहीं छूता। स्वाती नक्षत्र में बरसे हुए जल की तरफ ध्यान लगाये हुए एक बूँद के लिए तरसता रहता है। हे गुरुदेव! संसार भर का ऐश्वर्य, संसार भर की दौलत हमें अपने आकर्षण में बाँधने के लिए लालयित हो परन्तु हम आपके नाम को जपते हुए संसार के उस आकर्षण में न बँधें। हमें तो सिर्फ आप ही का आकर्षण चाहिए। हे दीन दयाल! हमारी कामना तो यह है कि संसार के साधन आप ने दिये, सम्पत्ति दिये, घर परिवार दिये आप की बड़ी कृपा है। भले ही इस संसार के साधन कम कर दें परन्तु हे गुरुदेव! आप अपनी भक्ति कभी कम न करें। अपने चरणों की श्रद्धा और लगन की सम्पत्ति कभी कम न करें, इस सम्पत्ति को इतना बढ़ाना कि हमारा ध्यान सदैव आप की तरफ हो, हमारी लगन आप की तरफ हो, हम यही आप से माँगते हैं। हे करुणा–निधान स्वीकार कीजिए।"

प्रार्थना–2–"हे मेरे गुरुदेव! ऐसे दिन कब आयेंगे जब मैं अपने परम् पद में विश्राम पाऊँगा? वह दिन कब आयेगा जब संसार मुझे स्वप्नवत् भासेगा? कब मेरे चित्त की तृष्णाओं

का, वासनाओं का नाश होगा? कब मेरा चित्त आप के ध्यान में मग्न रहने लगेगा? मैं न जाने कितनी बार माताओं के गर्भ में लटकता आया हूँ। हे कल्याणस्वरूप, सर्व समर्थ अन्तर्यामी गुरुदेव! आप मेरा हाथ पकड़ कर मुझे अपने निर्बन्ध, मुक्त स्वभाव में ले चलें। हे गुरुदेव! ये बाल सफेद हो गये लेकिन बुद्धि सफेद नहीं हुई, उसका छल–कपट एवं मायारूपी कालापन नहीं हटा। दाँत गिर गये, परन्तु तुच्छ आशाएँ, तृष्णायें नहीं गिरीं। हाथ में डण्डा आ गया लेकिन हृदय में आप का निःस्वार्थ प्रेम नहीं आया। शरीर जीर्ण हो गया फिर भी तृष्णाएँ जीर्ण नहीं हुईं। हे मेरे गुरुदेव! मुझे अपने स्वरूप को पाने की लालसा जगा दें। मेरे दिल में गुरुभक्ति की तड़प पैदा कर दें। हे गुरुदेव मेरे सिर पर सदैव आप की दया का हाथ रहे जिससे मैं कभी अपने को अनाथ अनुभव न करूँ। आप ऐसी लगन जगा दें जिससे मैं हर समय यह अनुभव करता रहूँ कि आप मेरे साथ ही हैं। ऐसी कृपा करें गुरुदेव कि मेरा मन सदैव आप के श्री चरणों के चिन्तन में निरन्तर लगा रहे। कृपा कीजिए हे गुरुनाथ, कृपा कीजिए।''

ये थे एक साधक गुरु भक्त के हृदय के उद्‌गार जो दो प्रार्थनाओं के माध्यम से व्यक्त किये गये। एक प्रार्थना मेरी तरफ से भी–

''अब प्रभु कृपा करहु एहि भाँती, सब तजिकृपा लिखउँ दिन–राती।''

निम्नांकित चन्द पंक्तियों के साथ अब मैं अपनी लेखनी को विराम देता हूँ–

जो सबको सुख देत सदा,
जिनको दिन–रैन जपें त्रिपुरारी।
जो नित दुख दारिद्र हरें,
जिनके यश गावत हैं श्रुतिचारी।
जो नित चक्र सुदर्शन धारि के,
करें निज भक्तन की रखवारी।
ऐसे गुरुजी महाप्रभुजी को,
है बारम्बार स्तुति हमारी।''
सादर जय गुरुदेव!

श्री सद्‌गुरुदेव का एक अकिंचन बालक–
अन्तू राम यादव
301, न्यू मेंहदौरी, तेलियरगंज, प्रयागराज–211004
फोन.–9936678368

मन्त्र-विवेक

ज्योतिषकलानिधि श्री शिवनाथ जी मेहरोत्रा

भगवान शंकर मन्त्र-शास्त्र के उपदेष्टा हैं। मन्त्र-शास्त्र का ज्ञान भारत की प्राचीन थाती है परन्तु कालक्रम के प्रभाव से मन्त्र-शास्त्र विषयक ग्रन्थ और ज्ञान धीरे-धीरे दुर्लभ होते चले गये। आज भारतीय विद्यार्थियों के नाम पर चल रही संस्थायें तो बहुत सी हैं और बड़े-बड़े मठ और संस्थान इन विद्याओं को आधार मान कर चल रहे हैं परन्तु मन्त्र-शास्त्र की प्रतिष्ठा करने की प्रवृत्ति या उत्साह कहीं नहीं दिखता। भगवान शंकर का स्पष्ट आदेश है–

अमन्त्रं अक्षरं नास्ति,
योजकस्तत्र दुर्लभः,

प्रत्येक अक्षर के अपने पृथक्-पृथक् प्रभाव हैं। उनका कम्पन, स्वभाव, स्वरूप, वर्ण, राशि, तत्त्व आदि अनेक विषय हैं जो महत्त्व-पूर्ण हैं। परन्तु उन सबको एकत्र कर सरल भाषा में ग्रथित करना व उसे जनोपयोगी बनाने की ओर ध्यान देने की ओर प्रवृत्ति करने पर ही यह महत्कार्य सम्भव हो सकेगा। इस सम्बन्ध में विद्वज्जनों और सामर्थ्यवान जनों को भी ध्यान देना प्रार्थित है।

मन्त्रशास्त्र का प्रयोग केवल काम्य कर्मों में या मोक्षप्राप्ति के लिए ही विदित नहीं है। राष्ट्रीय महत्व के कामों में भी उनका प्रयोग बताया गया है। ब्रह्मास्त्र, पाशुपतास्त्र वारुणास्त्र, अग्न्यास्त्र आदि के प्रयोग जो मन्त्रशास्त्रों में वर्णित हुए हैं कालक्रम से उन में त्रुटि आ गयी हो सकती है। परन्तु व्यावहारिक रूप मे काम आने योग्य उनमें अब भी बहुत कुछ सम्भव लगता है, शत्रुविनाश के लिए तान्त्रिक लोग अब भी बाणप्रयोग करते हैं।

ऐसे अनेक मामले पढ़ने-सुनने व देखने में आते हैं। मेरे ऊपर स्वयं एक व्यक्ति ने मारण प्रयोग किया था। मैंने स्वयं उसे सहन किया हुआ है। उक्त प्रयोग जिस दिन हुआ व जिस ढंग से उसने मुझे प्रभावित किया उसमें मानसिक के अतिरिक्त कई भौतिक लक्षण भी प्रकट हुए थे। मुझे मेरी संपत्ति से एक पाई भी न मिल सके ऐसा व्यवस्थित षड्यन्त्र जिन लोगों ने किया उन्होंने ही मुझे मार कर समाप्त करने की योजना के अंगरूप में यह प्रयोग किया था ऐसा अनुभव मुझे हुआ था। उस दिन मेरा छोटा भाई काशी छोड़ कर सदा के लिए जा रहा था और इसी कारण उससे मिलने मुझे उक्त भवन में जाना पड़ा था। वहाँ से वापस आने पर मेरे कुरते, धोती, गंजी आदि में खून लथपथ मिला। यह वही भौतिक चिह्न है जिसे

मैंने देखा। उसी रात्रि में स्वप्न में गुरुदेव जी श्री योगिराज चन्द्रमोहन जी महाराज जी ने दर्शन दिया और अभय देते हुए कहा कि तुम्हें इसका कोई दुष्प्रभाव विशेष नही हो सकेगा। जागने के बाद स्वल्प ज्वर व शरीर पीड़ा का प्रभाव तो रहा परन्तु कोई भारी हानि नहीं हुई। उक्त ज्वर व पीड़ा का प्रभाव पूरे तौर पर उसी दिन हुआ जिस दिन स्वयं श्री गुरुदेव जी काशी पधारे और उन्होंने मेरे सिर पर अपना आशीर्वाद हस्त फेरा।

यदि मन्त्रशास्त्र के इन प्रयोगों की ओर राष्ट्रीय स्तर पर अन्वेषण किया जाए तो यह विदित हो सकेगा कि परमाणु बम के इस युग में हम इनका प्रयोग किस प्रकार कर सकते हैं। भारत सरकार ने इस ओर यदि प्रवृत्ति नहीं की तो इस में दोष इस विद्या से सम्बन्धित आचार्यों पर आता है जो स्वयं इसके प्रतिष्ठित व प्रमाणित करने पर कभी प्रयत्नशील नहीं हुए। तान्त्रिकों में क्षुद्र अर्थ सिद्ध के लिए वाममार्गीय तन्त्र प्रयोगों की प्रवृत्ति तो दिखाई पड़ती है परन्तु उसे विशाल महत्त्व के कामों में प्रवृत्त करने मे वे अपने आपको सम्भवतः असमर्थ समझते हैं। ऐसे ही एक तान्त्रिक ने एक बार मुझे डराया था कि यदि अमुक प्रयोग के लिए मुझे अमुक धन न दोगे तो तुम्हारे पुत्र का अशुभ होगा। उसका उत्तर मैंने उन्हें तत्काल दिया था कि यदि आप में कोई शक्ति है तो आप सिर्फ मेरे सिर में दर्द पैदा करके दिखा दीजिए। वास्तव में क्षुद्र कार्यों में क्षुद्र शक्तियों का प्रयोग करने वाले यह तान्त्रिक किसी के निर्बल तन्त्र को पकड़ सकें तभी उसे हानि पहुँचा सकते हैं। जहाँ 'इष्ट' है वहाँ अनिष्ट कभी नहीं होता। अतः इष्ट को पकड़े रहने वाले किसी साधक की रक्षा स्वयं इष्टदेव को करनी ही पड़ती है। वास्तव में इन क्षुद्र शक्तियों के प्रयोग के कारण ही मन्त्र व तन्त्रशास्त्र अपमान व अवहेलनाओं का पात्र बनता गया है। परन्तु इससे एक बात यह तो स्पष्ट होती ही है कि यह मन्त्र व तन्त्र क्षुद्र हों या पवित्र–उन में भौतिक दृष्टि से न समझने योग्य अनेक शक्तियाँ निहित हैं। हमें तो मन्त्रशास्त्र की उस अनोखी शक्ति का ही अपने हित में प्रयोग करना चाहिए जो हमारे अभाव को भरने में सहायक होती है। ऐसा प्रतीत होता है कि हमारे इस तीन आयामों वाले विश्व में चतुर्थ आयाम का सहारा जोड़ने का काम मन्त्रशास्त्र ही करता है। अतः बहुत सी बातें में इस शास्त्र का प्रयोग करना सम्भव है। एक तन्त्र ग्रन्थ में तो बड़ी ही अद्‌भुत बात कह दी है। वहाँ भगवान शंकर बताते हैं कि यदि तुम्हारे प्रारब्ध में भी कोई वस्तु नहीं है परन्तु तुम इस प्रकार से यन्त्र का निर्माण कर लो तो वह वस्तु तुम्हें प्राप्त हो जायेगी।

कहते हैं–

''अथ यन्त्रविधिं वक्ष्ये

सर्वतन्त्रेषु गोपितम्।

सिद्धस्य लेखनादेव
यन्त्रसिद्धिः प्रजायते।
न भावि यत्र कार्यं तु
सिद्ध चापि तदा भवेत्।।

इस सिद्ध यन्त्र प्रकरण में 28 यन्त्रों का उल्लेख किया गया है। भाषा इतनी कठिन संस्कृत ह कि एक प्रसिद्ध तान्त्रिक विद्वान के समीप जो स्वयं एक विश्वविद्यालय में संस्कृत भाषा के प्राध्यापक रह चुके हैं (बाद में विभागाध्यक्ष भी रहे हैं) इस प्रकरण का अर्थ सही सही लगाने में कठिनाई की आत्मस्वीकृति मिली है। स्पष्ट ही इस प्रकार के ग्रन्थ भी दुर्लभ हो गये हैं और उनका अर्थ लगाकर उनके द्वारा प्राप्य लाभ की कमाई करना तो दुष्कर ही है। यह सब काम सम्भव कर पाने के लिए ही समर्थवान लोगों का ध्यान आकृष्ट किया जा रहा है।

मन्त्रों की विविध व्याख्यायें जो यत्र–तत्र बिखरी पड़ी है इन सबको एकत्र किया जाये तो निश्चय ही बहुत बड़ा काम होगा। अ आ एवं क ख आदि विविध स्वरों व व्यंजनों के पृथक–पृथक स्वरूप बताए गए हैं। एक एक अक्षर की साधना के समय उस उस स्वरूप का ध्यान किया जाता है। प्रत्येक अक्षर को कई विविध ग्रन्थों में अलग अलग तत्वों में विभाजित किया गया है और तत्सम्बन्धी प्रयोगजन उन ग्रन्थों में ही वर्णित किए गए हैं। उदाहरण के रूप में कुण्डलिनी शक्ति के प्रकरण में पचास अक्षरों की स्थिति जिस जिस चक्र में बताई गई है वहाँ वहाँ जिस तत्व की स्थिति है उस उस तत्व से उसका सम्बन्ध प्रतिपादित होता है। इसका प्रयोग शक्ति उत्थान के निमित्त विदित है। मन्त्र महोदधि में विविध अक्षरों का तत्व विभाग इस प्रकार प्रतिपादित हुआ है–

पृथ्वी	जल	तेज	वायु	आकाश
उ	ऋ	इ	अ	लृ
ऊ	ॠ	ई	आ	ॡ
ओ	औ	ए	ऐ	अं
ग	घ	ख	क	ङ
ज	झ	छ	च	ञ
ड	ढ	ठ	ट	ण
द	ध	थ	त	न
ब	भ	फ	प	ल
ल	व	र	य	श
क्त	स	क्ष	ष	ह

यहाँ यह बताया गया है कि पृथ्वी आदि पाँचों तत्वों में परस्पर मैत्री अमैत्री उदासीनता

आदि का ध्यान रखकर उक्त तत्व गत अक्षर मन्त्र का अपने ऊपर प्रभाव समझना चाहिए अर्थात् पृथ्वी तत्व का मित्र जल है। शत्रु तेज है। उदासीन वायु है। जल तत्व का मित्र पृथ्वी है। शत्रु तेज है। उदासीन वायु है। अग्नि अर्थात् तेज तत्व का मित्र वायु है, शत्रु जल है, उदासीन पृथ्वी है, उदासीन जल तत्व है। आकाशतत्व सभी का मित्र है।

उन उपरोक्त बातों को समझ लेने मात्र से अनेक मन्त्रों का कुछ रहस्य पता चलता है। इस ज्ञान का प्रयोग हम और भी कई प्रकार से कर सकते हैं। इससे यह विदित होता है कि तत्व क्रम के प्रभाव से हमारा तत्व हमारे नामाक्षर के अनुसार कौन सा है और हमारे शत्रु तत्व एवं मित्र तत्व के अन्तर्गत जो वर्ण हैं उनसे प्रारम्भिक नामों को हम एक बारगी जान सकते हैं। भला जल और अग्नि या पृथ्वी व अग्नि तत्व के लोग आपस में मैत्री कैसे कर सकते हैं?

इन अक्षरों का प्रयोग शक्ति कर्म में किस क्रम से होता है और विनाशादि कर्मों में किस क्रम से होता है इसका उल्लेख भी मंत्रशास्त्रों ने विविध स्थलों पर किया हुआ है। इनका अध्ययन करने से इनके प्रयोग की वैज्ञानिक अथवा सामान्य जनोपयोगी शास्त्र सम्मत-विधि का प्रतिपादन किया जा सकता है। अब शान्ति कर्म से सम्बन्धित इन अक्षरों के प्रयोग क्रम के सम्बन्ध में ध्यान दें। ज्योतिष शास्त्र का सर्वप्रधान चक्र सर्वतोभद्रचक्र है। अन्य सभी चक्रों का यह राजा है। जैसा इसका नाम है वैसा ही यह सब प्रकार से कल्याण प्रदान करने वाला चक्र है। प्रत्येक शुभकार्य में सर्वतोभद्रचक्र निर्माण कर उसका पूजन करने का विधान तो सभी कर्म काण्डी पालन करते हैं परन्तु उसमें कौन से कोष्ठक में कौन सा अक्षर पूजित होता है इसके बारे में वे या तो जानते नहीं या जानना आवश्यक नहीं समझते। सर्वतोभद्र ग्रथित यह चक्र नीचे दिया जा रहा है।

शान्तिकर यन्त्र

अ	आ	इ	ई	उ	ऊ	ऋ
ज	झ	ञ	ट	ठ	द	ॠ
छ	भ	म	य	र	ट	ऌ
च	ब	स	ह	ल	ण	ॡ
ङ	फ	ष	श	व	त	ए
घ	प	न	ध	द	य	ऐ
ग	ख	क	अः	अं	औ	ओ

योग का तात्पर्य और चरित्र-निर्माण

महन्त श्री वैद्यनाथ जी महाराज

योग के सामान्य धरातल पर उसकी साधना के षड़ङ्ग, अष्टांग, पञ्चदशाङ्ग आदि भेद निर्दिष्ट हैं। पर ये सभी स्तर मानव-जीवन और मानव के चरित्र-निर्माण के लिये अचल आधार हैं। इनमें यम-नियम के संयमपूर्वक सेवन से चरित्र उदात्त, पवित्र और प्रसादयुक्त होकर श्रेय की प्राप्ति में महनीय भूमिका की स्थापना करता है। योगरूप प्रधान विद्युत्शक्तिकेन्द्र, अलखनिरंजन परमात्मा के सत्-स्वरूप से, निरंजन से जीवन की कल्याणमयी मङ्गलज्योति प्रवाहित होती रहीत है और योगसाधनाएँ तथा यम-नियमादि योग के विभिन्न अंग-उपांग सभी उस केन्द्रीय शक्ति-गृह से युक्त होकर मानव को कल्मषरहित पुण्य जीवनयापन तथा आत्मदर्शन और परमात्म-साक्षात्कार की प्रेरणा देते रहते हैं। चरित्र-निर्माण की दिशा में यही योग का परम तात्पर्य अथवा श्रेयस्कर कार्य है। महायोगी गोरखनाथ जी ने एक सबदी में चरित्र-निर्माण का सम्पूर्ण रहस्य योगसाधक के लिये भर दिया है। उनका यह अमृतवचन सम्पूर्ण मानवता के लिये पवित्र चरित्र की प्रेरणा देता है। यह गोरखवानी 7वीं सदी की है जो इस प्रकार है-

योग को सदैव आत्मसंयय करना चाहिए। योग का आधार ही नहीं, स्वरूप भी चित्तवृत्ति का निरोध है। संसार में जन्म लेने वाले प्राणी के लिये यह उचित है कि वह आनन्दपूर्वक समस्त दुःखों का भोग करता हुआ भी उनमें अनासक्त रहे। इससे उसकी आत्मस्वरूप में स्थिति निरन्तर बनी रहती है। उसे काम और क्रोध से दूर रहना चाहिए। क्योंकि काम और क्रोध से ही प्राणी अविद्या-अन्धकार और ममत्व के बन्धन से आसक्त होने पर आत्मविस्मरण का शिकार हो जाता है। जीवन को व्यर्थ नहीं जाने देना चाहिए। मनुष्य का यह कर्त्तव्य है कि वह जीवन की सत्यता से, कर्तव्य-पालन से, विमुख न हो, अनासक्त भाव से जीवन के समस्त ऐश्वर्य-वैभव का भोग करता हुआ भी आत्म-संयम में रहे और मन पर नियन्त्रण रखे। यही गीता की भाषा में-'योगः कर्मसु कौशलम् कार्य बन्धन से बच निकलने का मार्ग और युक्ताहार-विहारमय निर्द्वन्द्व संतुलित स्थितिरूप 'समत्व-योग' है। यह समत्वयोग ही चरित्र-निर्माण का केन्द्रीय प्रकाशगृह है। इससे संग अथवा आसक्ति का अपने-आप त्याग हो जाता है और जीवन में निर्मलता का अमृत प्रवाहित होता है। यही योगस्थ कार्यसम्पादन

है, जिससे चरित्र–निर्माण में सहायता सुलभ होती है। भगवान् कृष्ण का कथन है–

योगस्थः कुरु कर्माणि संग त्यक्त्वा धनंजय।
सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते।।
तस्माद् योगाय युज्यस्व योगः कर्मसु,कौशलम्।।

(गीता 2 48, 50)

मनुष्य–जीवन की सार्थकता यही है कि उसका उचित सदुपयोग हो, वह व्यर्थ और निष्फल न चला जाये। जन्म से लेकर मरण–पर्यन्त समस्त संस्कारों को शास्त्र सम्मत ढंग से अपने जीवन में प्रस्तुत करते हुए अनासक्त होकर जीवात्मा परमात्मा के ध्यान और स्वरूप–चिन्तन में तत्पर रहे। नाथ–पंथ के सिद्धामृत–मार्ग में योगसाधनागत पवित्र चरित्र–निर्माण का यही अमृत फल है कि मनुष्य परमानन्द–परमस्वरूप में प्रतिष्ठित हो जाये।हमारे मत में पवित्र चरित्र के द्वारा नाथ–स्वरूप अथवा शिवस्वरूप की प्राप्ति ही लक्ष्य है।

नाथयोग में चरित्र–निर्माण की दिशा में अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, दया, धृति, क्षमा, आर्जव, मिताहार और शौचस्वरूप दस यमों का निर्देश है तथा इन यमों के संयमन की दिशा में साधक अथवा मनुष्यमात्र के लिये तप, सन्तोष, आस्तिक्य, दान, ईश्वरपूजन, सिद्धान्त–वाक्यश्रवण, ह्री मति, जप और हवन दस नियम आवश्यक हैं। नाथयोग के अप्रतिम साधना ग्रस्त हठयोग प्रदीपिका में यम–नियमों चरित्र–निर्माण के लिये स्थापना की गयी है–

अहिंसा सत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्य क्षमा धृतिः।
दयार्जवं मिताहारः शौचं चैव यमा दश।।
तपः सन्तोष आस्तिक्यं दानमीश्वरपूजनम्।
सिद्धान्तवाक्यश्रवणं ह्रीमती च जपो हुतम्।
नियमा दश सम्प्रोक्ता योगशास्त्रविशारदैः।।

(हठयोग प्रदापिका 1/17–18)

ये दस यम–नियम योग के शेष छः उपांगों के पोषक हैं। आसन सिद्ध योगी अथवा साधक अथवा मनुष्य शीत–उष्ण, क्षुत्पिपासा और आलस्य–तन्द्रा आदि द्वन्द्वोंपर विजय पा लेता है। श्वास–प्रश्वास की गतियों का विच्छेद ही प्राणायाम है। इसके द्वारा मन को स्थिर करने की शक्ति प्राप्त होती है और शरीर में चैतन्य का प्रवाह अनवरत होता रहता है। सतर्कता–पूर्वक मन और इन्द्रियों को वाह्य–विषयों के संस्पर्श से दूर रखकर आन्तर भाव में उन्हें प्रयुक्त करना ही प्रत्याहार है। धारणा, ध्यान और समाधि को अनेकविध बाह्य–आन्तर विषयों में प्रयुक्त करके विभिन्न प्रकार की सिद्धियाँ और उपलब्धियाँ प्राप्त की जाती हैं।

किसी निश्चित वस्तु पर ध्यान को केन्द्रित करने की प्रक्रिया को 'धारणा' करते हैं। जब चित्त सभी प्रकार की उच्छृङ्खल प्रवृत्तियों से मुक्त हो जाता है, तब धारणा ध्यान की स्थिति में परिवर्तित हो जाती है। ध्यान की प्रगाढ़ स्थिति ही समाधि है। निःसन्देह योग के इस साधना–मार्ग से चरित्र–निर्माण की प्रक्रिया की सम्पूर्ण सिद्धि होती है।

हमारे पुण्यश्लोक भारत–देश के मनीषियों, महर्षियों और सिद्धों तथा महायोगियों ने सारे विश्व के मानवों को वेदविहित वर्णाश्रमसम्मत आचार–विचार को जीवन में उतार कर सार्वभौम श्रेय की प्राप्ति की सत्प्रेरणा प्रदान की है। गोरक्षमहायोगी गोरखनाथ ने अपने अनुभव सिद्ध 'सिद्धसिद्धान्तपद्धति' नामक योगशास्त्र में कहा है–

सदाचारतत्त्वे ब्राह्मणास्तिष्ठान्ति, शौर्ये क्षत्रिय, व्यवसाये वैश्याः, सेवा भावे शूद्राश्च।

(सिद्धसिद्धान्तपद्धति 3/6)

इसका आशय यह है कि सदाचार, शौर्य, व्यवसाय और सेवाभाव ही समग्र मानव के लिये स्वधर्म है जिनके द्वारा जीवन की उन्नति होती है, चरित्र का निर्माण और विकास होता है। ब्राह्मण से शूद्र अनुक्रम में किसी वर्ण की हीनता या विशेष प्रतिष्ठा का द्योतक नहीं है, यह एक मानवीय क्रम है, जिसमें जो मनुष्य सदाचारी है, जो शौर्य में लगता है, जो व्यवसायकर राष्ट्र की समृद्धि बढ़ाता है और अपनी सेवा के द्वारा सामाजिक श्रेय का प्रतिपादन करता है, वही चरित्रवान है। वही संस्कृत और शिष्ट है। मनुष्यमात्र में वर्गीय अथवा जातीय भेदभाव की स्थापना तो निरर्थक है, सार्थकता यह है, कि सभी मनुष्य एक–दूसरे के आत्म सम्बन्धी हैं, और सभी के हृदय में परमात्मा और उसकी ज्योति प्रकाशित है। वास्तव में यही कर्मयोग है, जिसमें सत्य की पूर्ण प्रतिष्ठा है। कर्मयोग, भक्तियोग, ज्ञानयोग सब एक दूसरे से सम्बद्ध हैं और इनमें सत्यप्राप्ति की प्रतिष्ठा है। महायोगी गोरखनाथ जी ने कहा है–

सत्यमेकमतं नित्यमनन्तं चाक्षमं ध्रुवम्।
ज्ञात्वा यस्तु वदेद्धीरः सत्यवादी स कथ्यते।।

(सिद्धसिद्धान्तपद्धति 6/60)

जीवन के चरित्र में सत्य ही अमृत है। इस सत्य से ही चरित्र–निर्माण का तात्पर्य सम्पादित होता है।

यदिदं किं च तत्सत्यमित्याचक्षते।

(तैत्तिरीयोपनिषद् 2/6/1)

सत्य सर्वाश्रय है, परमात्मा अक्षय और सनातन है; यही चरित्र–निर्माण का सर्वोपरि शक्ति केन्द्र है, जिससे जीवात्मा अमृतत्व में प्रतिष्ठित होता है। सत्यप्राप्ति ही चरित्र की गरिमा है।

आचार्याभिमान योग

आचार्य श्री चन्द्रहास शर्मा

संसार के जितने भी मत–मतान्तर हैं उनका मूल स्रोत योग है। अपनी–अपनी आस्था, साधना पद्धति तथा बुद्धि की पहुँच के आधार पर विभिन्न धर्मावलम्बियों ने योग की विभिन्न कलाओं के आधार पर उसके भिन्न–भिन्न नाम तथा रूप प्रकट किये हैं। वस्तुतः सभी प्रकार के योग चाहे बौद्धों का, जैनों का, यहूदियों का या ईसाइयों का सम्यक् योग, निर्जरायोग, आत्मयोग अथवा शरणागत योग क्यों न हो--अष्टांग योग के ही अंश मात्र हैं। जैसे एक ही जल बुदबुद, तरंग, बिन्दु, धारा अथवा हिम खण्ड बन जाता है।

वैसे ही योग–स्थान तथा जनरुचि व सामर्थ्य भेद से नाना नाम वाला हो गया है। जैन धर्म ने अष्टांगयोग में से एक अहिंसा को लेकर ही अपने धर्म का विशाल–भवन खड़ा कर लिया। इसी प्रकार स्पर्श योग, स्पन्द योग, परामर्श योग, प्रणिधान योग अनुभूति योग, अविकम्प योग, आचार्य अभिमान योग आदि नाना प्रकार के योग विभिन्न उपासना पद्धतियों में दृष्टिगोचर होते हैं।

श्री वैष्णवों में रामानुज सम्प्रदाय की उपासना पद्धति में भक्ति को सर्वाधिक महत्व प्रदान किया गया है। भक्ति अनुराग पूर्ण स्मरण चिन्तन तथा आत्मसमर्पण के द्योतन के लिए एक प्रत्यय है। सिद्धेश्वर श्रीकृष्ण ने भगवद्गीता में प्रणत अनुराग की आर्तदशा को ईश्वर अनुग्रह का उपाय बताया है। जब साधक करुणार्द्र होकर आनन्द ज्ञान तथा शक्ति आदि से षड्विध ऐश्वर्य समन्वित ईश्वर के सम्मुख अपने आपको सर्वात्मना निछावर कर यह कहता है--हे प्रभो! मैं तेरा हूँ, तो ईश्वर तुरन्त विघ्न–बाधाओं को दूर कर साधक को अभय प्रदान कर देता है। जहाँ सूर्य हो वहाँ अंधकार भला कैसे रह सकता है? राजा का पुत्र यदि दीन–हीन दशा में रहे तो राजा को खुद अपमान तथा दुःख होगा। जब तक वह अपने को राज पुत्र घोषित नहीं करता तब तक कष्ट में पड़ा रहता है। जैसे ही वह चिल्ला चिल्लाकर अपना सम्बन्ध प्रकट करने लगता है राजा के चर राजा को सूचना देते हैं। राजा को अपने पुत्र के प्रति दया उमड़ आती है। वह अपने राज–ऐश्वर्य से पुत्र को सम्पन्न कर तत्क्षण दरिद्र दुःख को दूर कर देता है। गीता में सिद्धों के नाथ श्रीकृष्ण ईश्वर का स्वभाव बतलाते हैं–

सकृदेव प्रपन्नाय
तवास्मीति च याचते।

अभयं सर्व भूतेभ्यो
ददामि एतद् व्रतं मम।।

जिसका पिता सत् चित् तथा आनन्द की राशि हो उसका पुत्र (जीव) दु:ख तथा अज्ञान में क्यों रहे। पिता की सम्पत्ति का पुत्र उत्तराधिकारी होता है। गुरुनानक ईश्वर से उपालभ्भ भरी प्रार्थना करते हैं–

सांई! तेरा होके क्यों दु:ख पाऊँ मैं।

''बाबा तुलसीदास विभीषण की शरणागति–प्रसंग में भगवान के स्वभाव का उल्लेख करते हैं–

मम पन शरणागत भय हारी।

जीव का ईश्वर के साथ नित्य सम्बन्ध है तथापि माया और अविद्या के कारण वह सम्बन्ध खटाई में पड़ गया है। भक्ति योग के द्वारा ईश्वर की सन्निधि होती है योग–दर्शन में 'ईश्वर प्रणिधानाद्वा' सूत्र में ईश्वर प्रणिधान ही भक्ति कहलाती है। ध्यान और जप पूर्वक प्रपत्ति (आत्मसमर्पण) भक्ति का विशेष प्रकार है जिसके द्वारा ईश्वर साधक के अभिमुख हो कर उस पर अनुग्रह करता है और उसके अभीष्ट संकल्प को पूर्ण कर देता है तथा समाधि योग दे देता है। श्री वैष्णव सम्प्रदाय में भक्तियोग की प्राप्ति के सात सोपानों से मानी गई है। वे सात सोपान हैं–(1) विवेक–अदूषित एवं शुद्ध पवित्र भोजन द्वारा शरीर तथा मन की शुद्धि, (2) विमोक–कामनाओं में अनासक्ति, (3) अनवरत अभ्यास, (4) क्रिया–अपनी सामर्थ्यानुसार पंचमहायज्ञों तथा शोड्ष संस्कारों का सम्पादन, (5) सत्य, ऋजुता, दया, दान, जीव–अहिंसा का पालन, (6) अनवसाद, (7) अनुद्धर्ष–अतिसन्तोष का अभाव। इन सोपानों से ईश्वर की भक्ति मिलती है। भक्ति का पराकाष्ठा प्रपत्ति अर्थात् आत्मसमर्पण में जाकर होती है। प्रपत्ति का मार्ग निर्विघ्न मार्ग है। अपने को पूर्णतया परमगुरु ईश्वर के भरोसे छोड़ देना आत्मनिवेदन कहलाता है।

**जाहि विधि राखै राम
ताहि विधि रहिए।**

शरणागति भावना है। प्रपत्ति के अन्दर 6 अंग हैं–(1) आनुकूल्यस्य संकल्प: अर्थात् ईश्वर मेरी सहायता करेंगे इस प्रकार का दृढ़ विचार।

(2) प्रातिकूल्यस्य वर्जनम् अर्थात् प्रतिकूलता का निवारण।

(3) रक्षिस्यलीति दिश्वासो अर्थात् भगवान अवश्य मेरी रक्षा करेंगे–यह विश्वास।

**'विनु विश्वास भगति नहिं
तेहि विनु द्रवहिं न राम'**

बिना विश्वास के भक्ति नहीं हो सकती और बिना भक्ति के ईश्वर–कृपा प्राप्त नहीं होगी।

'जाने बिन न होइ परतीती।
बिन परतीत होइ नहि प्रीती।।
प्रीति बिना नहि भक्ति दृढ़।
जिमि खगेश जल की चिकनाई।।

ईश्वर के ऐश्वर्य, करुणा तथा लीला का बोध सद्गुरु कृपा तथा शास्त्र सन्त तथा विद्वानों का सेवन करने से होता है। श्रुति भगवती कहती है कि ज्ञानपूर्वक गुरुदेव के सानिध्य में निष्ठा और श्रद्धापूर्वक की गई उपासना शक्तिदात्री होती है–

'यदेव विद्यया करोति श्रद्धया उपनिषदा, तदेव वीर्यवत्तरं भवति।''

प्रपत्ति का चतुर्थ अंग है–गोप्तृत्ववरणम् अर्थात् भगवान को रक्षक समझकर उनका उसी तरह वरण कर लेना जिस प्रकार मतवाली मीरा ने गोविन्द को वरण किया था।

माई री मैंने लीनों गोविन्दा मोल।

अथवा गजेन्द्र की तरह व्याकुल होकर रक्षार्थ उनकी स्तुति करना।

(5) आत्मतिक्षेप अर्थात् मन वाणी कर्म सभी कुछ ईश्वर के समर्पन करना–

मेरा मुझ में कुछ नहीं
जो कुछ है सब तोर।
तेरा तुझको सौंपते
क्या लागे मोर।।

यह भावना आत्मनिक्षेप की भावना है।

(6) वार्पण्ये षड्विद्या शरणागतिः–निःसहाय तथा करुणा का भाव जो देखने में कायरता सा लगता है पर वस्तुतः वह सतोगुण की उत्कृष्ट अवस्था है जिसमें अहं प्रत्यय विगलित होकर 'त्वमेव शरणं मम दीनबन्धो' का भाव प्रबल हो जाता है। इस प्रकार ये छः सोपान हैं।

भक्ति को उदय होने पर शनैः–शनैः अन्यन्यता का भाव दृढ़ हो जाता है। अनन्यता आ जाने का तात्पर्य है कि अपने इष्ट के प्राणों में प्राण, मन में मन, बुद्धि में बुद्धि, चित्त में चित्त इस तरह मिल जाये कि अपना कुछ रह ही न जाये। ऐसी स्थिति होने पर ईश्वर भक्त के हाथ बिक जाते हैं। भक्त का कष्ट उनका कष्ट हो जाता है। भक्त की इच्छा की उन्हें सबसे अधिक चिन्ता होती है। पहले भक्त भगवान के पीछे पीछे चल रहा था। कभी वे मिल जाते थे कभी छिप जाते थे। प्रार्थना स्तुति जप ध्यान तथा अनुष्ठानों से भक्त भगवान को प्रसन्न

कर अनुकूल बनाने का प्रयत्न करते थे किन्तु अनन्य भाव आ जाने पर स्थिति बदल जाती है। कबीर कहते हैं कि–

'पाछे पाछे हरि फिरैं,

कहत कबीर कबीर।''

हरि भक्ति के पीछे–पीछे ही नहीं फिरते बल्कि उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति तथा प्राप्त की हुई वस्तुओं का रक्षण प्रभु स्वयं करते हैं। जैसे नरसी महता तथा धना आदि के कर्म प्रभु ने स्वयं किये थे। सिद्धेश्वर श्रीकृष्ण गीता में घोषणा करते हैं–

'अनन्याश्चिन्तयन्तो मां

ये जनाः पर्युपासते।

तेषां नित्याभियुक्तानां

योग क्षेमं वहाम्यहम्।।''

8/20

जो ईश्वर के साथ पूरी तरह उसी तरह जुड़ जाते हैं जिस प्रकार गर्भस्थ बालक नाल द्वारा माता से जुड़ जाता है उनका चिन्तन और उन की सेवा एकनिष्ठ अन्तःकरण की सेवा हो जाती है। उस एकाग्र अवस्था में साधक के अन्दर यदि कोई कामना आ जाती है तो उस की पूर्ति के लिए ईश्वर को ही कोई न कोई प्रयत्न करना पड़ता है। जैसे बिना पंख वाले पक्षी शावकों को जीवन रक्षा के लिए उसकी माता चिड़िया प्रयत्न करती है। जिनका ध्यान 'उठत बैठत सोवत जागत पल न एक विसरात' की स्थिति में हर समय रता है। उनकी इच्छाओं की पूर्ति प्रभु स्वयं करते हैं और प्राप्त वस्तु का संरक्षण भी प्रभुजी ही करते हैं। सभी प्रकार के योगियों में कौन सर्वोत्तम है, यह प्रश्न अर्जुन ने अपने आराध्य सिद्धों के स्वामी श्रीकृष्ण से पूछा। भगवान ने संक्षेप में उत्तर दिया कि जिन योगियों का अन्तःकरण मुझमें आत्मसात् हो चुका है तथा जो श्रद्धा के साथ (दिखावे या भक्त कहलाने के लोभ से या सिद्धि के स्वार्थ से नहीं) निरन्तर चिन्तन भजन करते रहते हैं वे मेरे हृदय में ही जुड़ जाते हैं। उनके हृदय की हर धड़कन, हर चिन्ता मेरी अपनी चिन्ता बन जाती है। मैं पूर्णकाम तथा निर्द्वन्द्व हूँ, अतः जो मेरा हो जाता है उसे मैं अपने जैसा बना कर छोड़ता हूँ–

'योगिनामपि सर्वेषां

मद्‌गतेनान्तरात्मना।

श्रद्धावान्भजते यो मां

स मे युक्ततमो मतः।।'

6/47

इस श्लोक में 'युक्तम' शब्द विशेष महत्व का है। युक्त योगी वह है जो–

युक्त इत्युच्यते योगी
समलोष्ठाश्मकाञ्चनः।

अर्थात् पत्थर, ढेले और स्वर्ण को एक समझता है अर्थात् प्रकृति पर समदृष्टि रखता है। जो भाव भक्ति से ईश्वर को भजता है वह युक्ततर कहलाता है किन्तु जिसने अपने अन्तःकरण में अपने इष्ट को बैठा लिया है वह सब से अधिक ईश्वर के निकट है। जो जितना निकट हो जाता है उतना ही वह निश्चिन्त हो जाता है। भक्ति शास्त्र में इसी को निर्भरा भक्ति भी कहते हैं। बाबा तुलसी ने भगवान से यही प्रार्थना की है कि हे भगवान यदि आप मुझ पर प्रसन्न हो तो मुझे युक्ततम् योगी बना लो। अपनी निर्भरा भक्ति देकर मेरा बोझ अपने ऊपर ले लो।

'भक्तिं प्रयच्छ पुङ्गव निर्भरां मे।
कामादि दोष रहितं कुरु मानसं मे।।

–रामायण

योगिराज हनुमान अशोक वाटिका में सीता जी के आशीर्वाद से प्रपत्ति के चरमफल निर्भरा भक्ति को प्राप्त कर परम आनन्दत हो जाते हैं।

जो अपने मन और अपनी बुद्धि से प्रभुजी का सौदा कहलेता है वह कभी घाटे में नहीं रहता एक बार पूर्ण समर्पण हो जाये तो साधक उन का अपना निजी हो जाता है। श्री रामकृष्ण–परमहंस कहते थे कि एक बार मालिक से प्रगाढ़ प्रेम हो जाये तो वह सब कुछ सेवक को वे हिचक सौंप देता है तथा कहाँ पर क्या है इसका उसे स्वतः ज्ञान करा देता है। सेवक ही उसका मालिक बन जाता है। इसी प्रकार प्रभु कृपा हो जाये तो ज्ञान ऐश्वर्य तथा वैराग्य स्वतः प्राप्त हो जाते हैं। गीता में भगवान कहते हैं–

मय्यर्पित मनोबुद्धि
ममिवैष्यस्यसंशयम्।'' *8/7*

अर्थात् योगी मन और बुद्धि को प्रभु को सौंप कर प्रभु में ही रमण करने लगता है। ऐसे योगी नित्य युक्त कहलाते हैं। नित्ययुक्त योगी ही युक्ततम् होता है। श्री मद्‌भगवद् गीता के नवम अध्याय के चौदहवें श्लोक में सिद्धेश्वर श्रीकृष्ण ने संकेत दिया है जिससे नित्ययुक्त को जाना जा सकता है।

सततं कीर्तयन्तो मां
यतन्तश्च दृढ़व्रताः।

नमस्यन्तश्च मां भक्तया

नित्ययुक्ता उपासते।।

8/14

अर्थात् नित्युक्त योगी सदा निरन्तर–"रामहिं सुमिरिय, गाइय रामहिं, सन्तत सुनिय राम गुण ग्रामहिं' की स्थिति में रहकर भजन करता है और अपने आराध्य के चरणों में नत मस्तक होने के अतिरिक्त कुछ और नहीं जानता। उसका प्रेम इतना अटूट होता है कि संसार के कोई प्रलोभन तथा पहाड़ से दुःख भी उसके प्रेम में बाधक नहीं बनते।

'कामिहि नारि पियारि जिमि,

लोभिहि जिमि प्रिय दाम।

तिमि रघुनाथ निरन्तर हि

प्रिय लागहु मोहि राम।।'

यह स्थिति होती है युक्ततम योगी की।

इस 'निर्माण भक्ति' 'युक्ततम' योग स्थिति तथा 'प्रपत्ति' का विवेचन विभिन्न शास्त्रों तथा पद्धतियों में विभिन्न नामों से उपदिष्ट है। वैष्णव आचार्यों के ग्रन्थ अर्थपञ्जक में आचार्याभिमान योगनामक उपासना पद्धति का उल्लेख मिलता है। यह ईश्वर प्रणिधान का वाह्यरूप है। अपने आचार्य के समक्ष पूर्णतया समर्पण करने की क्रिया को आचार्याभिमान योग कहते हैं। जैसे माता शिशु की चिकित्सा के लिए स्वयं औषधि गहण करती है और अपने दुग्ध पान द्वारा शिशु को निरोग कर देती है। इसी प्रकार आचार्य (गुरु) शिष्य की मुक्ति के लिए उस का चिन्तन करता है, गुरु और शिष्य के बीच दृढ़ प्रेम का ऐसा सम्बन्ध स्थापित हो जाता है जो शिष्य समर्थ सिद्ध कोटि के गुरुदेव के चरणों में सर्वात्मना समर्पित हो जाता है उसके संस्कार चक्र का भुगतान गुरुदेव स्वतः करने लगते हैं। श्री गुरुदेव उसके लिए औषधि डॉक्टर तथा न्यायाधीश सब कुछ स्वयं बन जाते हैं। योग–योगेश्वर आनन्द कन्द श्री प्रभुजी अपने प्रिय शिष्यों के इस प्रकार के कार्य करते देखे गये हैं। जो इस मार्ग के व्यक्ति नहीं हैं। उन्हें यह बात प्रोपेगण्डा ही लगेगी किन्तु जिन पर उनकी कृपायें सतत् बरसती हैं वे प्रायः उनकी कृपाओं को देखकर आनन्द के अश्रु बहाते रहते हैं।

श्री सम्प्रदाय–रामानुज सम्प्रदाय की दो शाखायें हैं–(1) बड़कलै (औदीच्य) 2–टेंकले (दाक्षिणात्य) प्रथम शाखा में वानर भक्ति दूसरी शाखा में मार्जार भक्ति को ईश्वर की अनुकम्पा प्राप्त करने के लिए आवश्यक माना है। वानरी अपने बच्चे को सुरक्षित पहुँचाती है किन्तु इसके लिए बच्चे को प्रयत्न करके अपनी माँ के पेट से चिपकना पड़ता है बिल्ली

स्वयं अपने बच्चे को उठाकर मजबूती से अपने दाँतों में दबाकर एक स्थान से दूसरे स्थान पर रख देती है। पहले सिद्धान्त में बच्चे को प्रयत्न करना पड़ता है और दूसरे सिद्धान्त में माँ स्वयं बच्चे के लिए प्रयत्न करती है। जब मन पूर्ण भावना तथा श्रद्धा के साथ इष्ट में समर्पित हो जाता है तो मार्जार भक्ति उदित होती है।

उस स्थिति में गुरुदेव शिष्य के रोग दु:ख स्वयं अपने शरीर पर ले लेते हैं और शीघ्र उस का भुगतान कर शिष्य का कल्याण कर देते हैं। परमगुरु ईश्वर का अनन्य चिन्तन बन जाने पर वे अपने भक्त की चिन्ता करते हैं। भक्त आनन्द करता है और उसके आराध्य धनुष–बाण लेकर उसकी रखवाली करने लगते हैं।

विचार–कण

दु:खियों के दु:ख का अनुभव करो और उनकी सहायता करने को आगे बढ़, भगवान तुम्हें सफलता देंगे ही। मैंने अपने हृदय में इस भार को और मस्तिष्क में इस विचार को रख कर बारह वर्ष तक भ्रमण किया। मैं तथाकथित बड़े और धनवान व्यक्तियों के दरवाजों पर गया। वेदना–भरा हृदय लेकर और संसार का आधा भाग पार कर, सहायता प्राप्त करने के लिए मैं इस देश (अमरीका) में आया। ईश्वर, महान् है। जानता हूँ, वह मेरी सहायता करेगा। मैं इस भूखण्ड में शीत से भूख से भले ही मर जाऊँ, पर हे तरुणों, मैं तुम्हारे लिए एक वसीयत छोड़े जाता हूँ, और वह है यह सहानुभूति–गरीबों, अज्ञानियों और दु:खियों की सेवा के लिए प्राणपण से चेष्टा।

मनुष्य अल्पायु है और संसार की सब वस्तुयें वृथा तथा क्षणभंगुर हैं, पर वे ही जीवित हैं, दूसरों के लिए जीते हैं, शेष सब तो जीवित की अपेक्षा मृत ही अधिक हैं।

–मैं उस धर्म और ईश्वर में विश्वास नहीं करता, जो विधवा के आँसू पोंछने या अनाथों को रोटी देने में असमर्थ है।

–स्वामी विवेकानन्द

यौगिक प्रश्नोत्तरी

पूज्यपाद श्री गुरुदेव जी द्वारा

आश्रम का शुद्ध वातावरण था। प्रातःकाल ब्रह्म मुहूर्त में इधर–उधर से सत्संगी लोग आकर अपने अभ्यास में लगे हुए थे। योग शिक्षक साधक समुदाय अपनी–अपनी कक्षाओं में योग शिक्षा दे रहे थे। ध्यानाभ्यासी लोग अपने मन को ध्यानाभ्यास में लगाकर लीनता प्राप्त कर रहे थे। इस प्रकार के वातावरण में थोड़ी ही देर बाद श्री आनन्द–कन्द प्रभु जी की आरती का समय आया। सभी साधक समुदाय गद्–गद् कण्ठ होकर आरती का उच्चारण करने लगा। आकाश तल पर ध्वनि निनादित हो उठी–

'चरणारविन्दम् गोविन्द नमामि
गुरुदेव शरणम् गुरुदेव नमामि''

ज्यों ही श्री प्रभुजी की आरती जय ध्वनि के साथ सम्पन्न हुई। साधक समुदाय सभी यथा स्थान अपने आसन पर बैठ गये। कुछ जिज्ञासु साधकों के मन में तीव्रतम् जिज्ञासा उठी हुई थी। वे लोग अपनी शंका निवृत्ति के लिये कुछ प्रश्न पूछना चाहते थे।

''आकारी रैंगतेगर्त्या
चेष्टया भाषणेन च
नेत वक्त्र विकारैश्च
जायते अन्त गतं मनः।''

उक्त सिद्धान्तानुसार श्री योगाचार्य जी ने साधकों के मनोभावों को समझ लिया और वे बड़ी गम्भीर मुद्रा से कहने लगे–''भाई तुम्हारे मनों के अन्दर कुछ जिज्ञासा दिखलाई दे रही है यदि तुम कुछ पूछना चाहते हो तो पूछो। तुम्हारे मनोभिलिषित भावों को शास्त्रीय सिद्धान्तानुसार समझाने का प्रयत्न करेंगे।'' श्री योगाचार्य जी के ऐसा आदेश देने के बाद तुरन्त एक जिज्ञासु साधक ने **प्रश्न** किया–

''हे प्रभो आप कृपा करके यह बतला दीजिये कि योग जिसको कहते हैं? ताकि आप के उत्तर को समझकर हम यही रूप से योगानुगामी बन जायें।

उत्तर–'हे पुत्र सुनो चित्त वृत्ति निरोध को योग कहते हैं। शास्त्रीय परिभाषानुसार 'चित्तवृत्तिनां नितरांरोधेद् योगः' अर्थात् चित्त वृत्तियों का समूलोन्मूलन ही योग कहलाता है।'

प्रश्न–''हे गुरुदेव! जब चित्त वृत्तियों का समूलोन्मूलन हो जायेगा तब साधक की क्या

स्थिति होगी? और चित्त वृत्तियों का आत्मा से क्या सम्बन्ध है? यह बात भी खोल कर स्पष्टीकरण के साथ समझा दीजिए–

उत्तर–''हे पुत्र सुनो! आत्मा एक शुद्ध निर्मल ज्योति है जिसमें कभी कोई विकार नहीं। गीता में श्रीकृष्ण ने स्वयं इस बात को स्वीकार किया है कि–

'अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्यो शोष्य एव च
नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः'

अर्थात् आत्मा बिल्कुल अच्छेद्य, अभेद्य, अचल तथा अविकारी है। केवल मात्र बौद्धिक ज्ञान द्वारा ही यह सुखी दुखी दिखलाई देता है वस्तुतः स्वयं तो यह बिल्कुल अविकारी है।

प्रश्न–''हे गुरुदेव! कृपा करके यह बात समझाइये कि बुद्धि और आत्म का क्या सम्बन्ध है?

उत्तर–''हे पुत्र! इस बात को तुम इस प्रकार से समझ लो–आत्मा एक विकार रहित निर्मल ज्योति है और बुद्धि जड़ है। आत्मा का तेज जड़ बुद्धि पर पड़ा तो वह चेतन हो उठी। चेतन ही उठने पर जड़ बुद्धि ने अपना प्रभाव आत्मा पर डाला अर्थात् बुद्धि ने अपना स्वरूप आत्मा को दिखलाया, उसका प्रभाव पड़ जाने से आत्मा अपने आप को सुखी और दुखी अनुभव करने लगा। इसी लिये आजकल की परिभाषा में आत्मा को बुद्धिबोधात्मा कहा जाता है।

प्रश्न–हे गुरुदेव! बुद्धिबोधात्मा का क्या अर्थ है? इसका तो स्पष्ट अर्थ यही हुआ कि आत्मा पर बुद्धि का प्रभाव पड़ गया, तब तो सीधे शब्दों में आत्मा विकारी बन गया?

उत्तर–हे पुत्र! ऐसी बात नहीं है विकारी तो नहीं बना किन्तु विकारी जैसा भासित होने लगा। इस बात को तुम इस प्रकार से समझो जैसे बिजली की रोशनी हरे बल्ब के अन्दर हरी, पीले के अन्दर पीली, लाल के अन्दर लाल तथा काले के अन्दर काली दिखलाई देती है। इसी प्रकार आत्मा का निर्मल प्रकाश भी त्रिगुणात्मिका जड़ बुद्धि के अन्दर भी जैसा उसका स्वरूप है वैसा ही भासित होने लग गया। इसी कारण से संसार में जन्म लेने वाले व्यक्तियों को सुख दुःख की अनुभूति होती रहती है। यही जन्म और मरण का कारण है। इसी कारण भगवान पतंजलि देव ने 'योगश्चित्त वृत्ति निरोधः' कह करके चित्त वृत्तियों के नितरां निरोध को योग बतलाया है।

प्रश्न–हे गुरुदेव! जब चित्त वृत्तियों का समूलोन्मूलन निरोध हो जायेगा तब चित्त वृत्तियें तो रहेंगी ही नहीं? तब आत्मा की क्या स्थिति होगी, आत्मा कैसे स्वरूप में रहेगा?

अब तो आत्मा बुद्धि बोधात्मा है इसलिये सुख दुःख का अनुभव करता रहता है। जब चित्त-वृतियें बिल्कुल होंगी ही नहीं उस हालत में आत्मा सुख दुःख का उपभोक्ता रहेगा नहीं तो इसका क्या स्वरूप कहलायेगा? कृपा करके यह बात स्पष्टीकरण के साथ आप मुझे समझा दीजिए।

उत्तर–हे पुत्र! तुम्हारा यह प्रश्न बिल्कुल ठीक एवं शास्त्र सम्मत है और इस का उत्तर स्वयं भगवान पतंजलि देव जी ने ही योग दर्शन के तीसरे सूत्र में बिल्कुल स्पष्ट शब्दों में दे दिया है वह इस प्रकार से है–

'तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्'

अर्थात् तब द्रष्टा जीवात्मा अपने शुद्ध स्वरुप के अन्दर प्रतिष्ठित हो जाया करता है।

प्रश्न–हे गुरुदेव! स्वरूप प्रतिष्ठा कैसी होती है? कृपा करके यह बात और मुझे समझा दीजिए। क्या स्वरूप प्रतिष्ठा हो जाने के बाद आत्मा को सुख दुःख आदि का कोई अनुभव नहीं होता?

उत्तर–हाँ पुत्र! स्वरूप स्थिति का नाम निरोध समाधि है। उसी को योग कहा गया है। उपनिषद् कार इसके विषय में खोलकर स्पष्ट लिखते हैं कि–

''समाधि समतावस्था जीवात्म परमात्मनः समाधिर्वै योगः''

अर्थात् जीवात्मा और परमात्मा की समतावस्था को ही योग कहा गया है और वही निरोध समाधि कहलाती है। निरोध समाधि में पहुँच जाने पर आत्मा बिल्कुल शुद्ध स्थिति में आ जाया करता है, वहाँ तक मन और बुद्धि की कोई पहुँच नहीं रहती निरोध समाधि की स्थिति को अनुभवी सन्तों ने इस प्रकार कहा है–

'मन बुद्धि से परे कोई
बिरला जाने सन्त'

और इसके साथ–साथ 'तदा द्रुष्टः स्वरुपे अवस्थान' इस सूत्र पर भाष्य लिखते हुए श्री व्यास देव महाराज ने भी अपने शब्दों में पूर्ण रूपेण व्यक्त कर दिया है–

'स्वरूप प्रतिष्ठा तदानीं
चित्त शक्तिर्यथा कैवल्य,
व्युत्थान चित्ते तु सति
तथापि भवन्ति न तथा।'

अर्थात् स्वरूप प्रतिष्ठा का अर्थ है जैसी चेतन शक्ति मोक्ष में हुआ करती है। यद्यपि आत्मा संसार में जन्म और मरण के दुखों का अनुभव करता हुआ भी स्वरूप प्रतिष्ठा के रूप

में तो बिल्कुल विकार रहित शुद्ध बुद्ध मुक्त है ही किन्तु ऐसा होने पर भी क्योंकि यहाँ पर यह बुद्धि बोधात्मा है इसलिये स्वरूपात्मा नहीं है। स्वरूप प्रतिष्ठा तो यह तभी कहलायेगी जब इसका बौद्धेय बोध बिल्कुल समाप्त हो जायेगा और आत्मा जब अपने शुद्ध स्वरूप में रह जायेगा।

प्रश्न—हे गुरुदेव! इसका तो अर्थ यह हुआ कि निर्बीज अर्थात् निरोध समाधि ही समाधि है। इसके अतिरिक्त मैं अपने गुरुभाई और बहिनों के समुदाय में यह देखता हूँ कि लोग विभिन्न प्रकार की अपनी ध्यान स्थिति को सुनाते और बतलाते हैं। ऐसी हालत में देखने और सुनने का जो विषय है वह तो बुद्धि का ही ज्ञान हुआ। अतः अच्छे अच्छे ध्यानी साधक को भी जो ध्यानानुभूतियाँ होती रहती हैं वे सबका योग नहीं है?

उत्तर—हे पुत्र! तुम बात तो ठीक कहते हो। तुम्हारा प्रश्न बिल्कुल ठीक है किन्तु ''योगश्चित्त वृत्ति निरोधः'' इस सूत्र पर भाष्य लिखते हुये भगवान व्यास देव जी ने एक संकेत दिया है जो निम्न प्रकार है—

सर्व शब्दा ग्रहणात् सं प्रज्ञातोऽपि योग इत्याऽऽख्यायते, चित्तं हि प्रख्याप्रवृतिस्थितिशीलत्वात् त्रिगुणम् प्रख्यारूपं हि चित्त सत्त्वं रजस्तमोभ्यां सं सृष्ट मैश्वर्य्य विषय प्रियं भवति,

तदेव तमसांऽनुविद्धमाधर्मा ज्ञानावैराग्या नैश्वर्य्योपगं भवति, तदेव प्रक्षीण मोहाव रणं सर्वतः प्रद्योतमानम्नु विद्धम रजो मात्रया धर्मज्ञान वैराग्यैश्वयर्योपगं भवति, तदेव रजोलेशमलापेतं स्वरूप प्रतिष्ठं सत्व पुरुषान्यता ख्याति मात्र धर्ममेवध्या—नोपगं भवति, तत्परं प्रसंख्याना मित्या चक्षते ध्यायिनः चितशक्तिर्परिणामिन्य प्रतिसंक्रमा दर्शित विषया शुद्धा चानन्ता च सत्त्व गुणात्मिका चेयमतो विपरीता विवेक ख्यातिरितिः अतस्तत्याँ विरक्त चित्तं तामपि ख्यातिं निरुणाद्धि तदवस्थं चित्तं संस्कारो पगं भवति स निर्बीजः समाधिः न तत्र किंचित सम्प्रज्ञायत इत्यसम्प्रज्ञातः द्विविधः स योगश्चित्त वृत्ति निरोध इति।

अर्थात् क्योंकि 'योगश्चित्त वृत्ति निरोधः' इस सूत्र में 'रोगः सर्व चित्त वृत्ति निरोधः' ऐसा नहीं कहा गया है इसलिए सम्प्रज्ञात को भी योग ही कहा गया है क्योंकि प्रख्या प्रवृत्ति शील होने से चित्त त्रिगुणात्मक है। एक नियम की बात चलती है और वह यह कि—हमारे चित्त में जिस समय जो गुण प्रधान होता है उसके साथ दो अन्य गुण उसके अधीन काम करने वाले उसके सहचारी रहते हैं। जिस समय चित्त सतोगुण प्रधान तथा रजोगुण एवं तमोगुण उसके सहचारी रहते हैं तब तक चित्त ऐश्वर्य को चाहने वाला होता है और उसके बाद उस ही चित्त

में जब तमोगुण की प्रधानता आ जाती है तब वह चित्त अधर्म अज्ञान, अवैराग्य और अनैश्वर्य की ओर झुका रहता है और जब वह चित्त प्रक्षीण मोहावरण हो जाता है केवल मात्र बहुत थोड़ा सा रजोमात्रा से अनविद्ध रहता है तब वह चित्त धर्म, ज्ञान तथा वैराग्य को चाहने वाला होता है और वही चित्त जब रजोगुण की मात्रा से बिल्कुल छूट जाया करता है तो स्वरूप प्रतिष्ठित धर्ममेघ समाधि वाला कहलाया करता है, ध्यानी लोग इसे परमज्ञान कहते हैं। वैसे नियमानुसार चित्त शक्ति अर्थात् जीवात्मा बिल्कुल अपरिणामनीय है। इसके ऊपर किसी का कोई प्रभाव नहीं पड़ता शुद्ध और अनन्त है किन्तु बुद्धि का प्रभाव पड़ जाने से दर्शित विषया कहलाती है और जो यह विवेक ख्याति है वह भी सतोत्वगुणात्मिका होने के कारण हेया है। इसलिये उसमें भी विरक्त हुआ साधक गुणात्मिका होने के नाते से उसको भी छोड़ देता है। जब चित्त उस ख्याति को भी छोड़ देता है तब उस चित्त में मैं हूँ इस प्रकार की वृत्ति शेष रह जाती है। यह वृत्ति भी समाप्त हो जाने पर साधक निर्बीज समाधि तक पहुँच जाता है। इस समाधि को असम्प्रज्ञात समाधि कहते हैं इस लिए सम्प्रभात और असम्प्रज्ञात दो प्रकार के योग का वर्णन किया है और जहाँ से भगवान पतजलि ने अथ योगानुशासनम् कहकर योग दर्शन का आरम्भ किया है, इस सूत्र पर भाष्य लिखते हुए भगवान व्यास देव ने ये पंक्तियाँ लिखी हैं इसमें चित्त किन–किन अवस्थाओं में रहता है यह समझाया है जो वह इस प्रकार है–

''योगानुशासनं शास्त्रमधिकृतं वेदितव्यं

योगः–समाधिः सच सार्वभौमश्चित्तस्य धर्मः क्षिप्तं, मूढ़, विक्षिप्तं, एकाग्रम्, निरुद्धम्, इति चित्त भूमयः तत्र विक्षिप्ते चेतसि सद्भूतमर्थ प्रद्योत यति, क्षिणोति च क्लेशानकर्म बन्धनानि श्लथयति, निरोधमिमुखम् करोति स सम्प्रज्ञातो योग इत्याख्यायते सच वितर्कानुगतो, विचारानुगत आनन्दानुगतोऽस्नितानुगत इत्यु परिष्टात्प्रवेदिष्यामः सर्व वृत्ति निरोधे त्वसम्प्रज्ञातः समाधिः।

अर्थात् योगानुशासन शब्द का अर्थ शास्त्र में प्रवेश करने के अधिकार को कहा गया है। 'योग समाधि' कह करके योग शब्द की अभिव्यक्ति की है वह समाधि सार्वभौम चित्त का धर्म है, क्षिप्त मूढ़ विक्षिप्त एकाग्र और निरुद्ध ये चित्त की भूमिकायें कहलाती है और वहाँ पर विक्षिप्त चित्त में, क्योंकि विक्षेप प्रधान है और समाधि गौण है, इसलिये विक्षोप–सर्वजनी समाधि को योग पक्ष में नहीं माना गया है और जो समाधि चित्त की एकाग्रावस्था को प्राप्त होती है जिसमें पहुँचकर साधक वस्तु तत्व की यथार्थता को जान लेता है और क्लेश बन्धन क्षय हो जाते हैं–कर्म कलाप कमजोर पड़ जाता है और चित्त को निरोध की ओर ले

जाती है, वह समाधि सम्प्रज्ञात समाधि कहलाती है। सम्प्रज्ञात योग की चार श्रेणी होती हैं।

(1) विचारनुगम (2) वितर्कानुगम (3) आनन्दानुगम और (4) अस्मितानुगम। ये चारों श्रेणी सम्प्रज्ञात समाधि की हैं इनमें चित्त वृत्तियाँ काम करती रहती हैं और निर्बीज में जाकर चित्त का समूलोन्मूलन हो जाता है।

हे गुरुदेव! आपने सम्प्रज्ञात योग की चार श्रेणियाँ बतलाई हैं वे तो मैं बाद में समझ लूँगा किन्तु पहले मुझे सार्वभौम चित्त किन–किन भूमिकाओं में किस–किस प्रकार रहता है, यह बात पूरी तरह स्पष्टीकरण के साथ समझा दीजिए–ताकि मैं भली प्रकार समझ जाऊँ कि चित्त अपनी अपनी भूमिकाओं में किस प्रकार रहा करता है और बाद में निरोध तथा निर्बीज स्थिति में चित्त की क्या स्थिति होती है?

उत्तर–हे पुत्र! इस बात को तुम इस प्रकार से समझ लो। पहले भी तुम्हें समझाया था कि प्राख्या प्रवृत्ति और स्थिति शील होने से चित्त त्रिगुणात्मक है। देखो जहाँ पर जिस गुण की प्रधानता हो जाती है वहाँ दो अन्य गुण उस प्रमुख चित्त का अनुगमन करते हैं। जैसे भगवान व्यास देव ने सारे संसार के प्राणियों को उपरोक्त पाँच भूमिकाओं में बाँट दिया है। उनमें से मूढ़ावस्था के प्राणी वे कहलाते हैं जिनमें तमोगुण की प्रधानता होती है और रजोगुण व सतोगुण गौण रूप से रहा करते हैं। ऐसे प्राणी अधर्म, अज्ञान अवैराग्य एवं अनैश्वर्य को चाहने वाले गधे, घोड़े तथा खच्चर आदि प्राणियों की तरह मूढ़पन के प्राणी कहलाते हैं। उसके बाद दूसरे प्राणी वे हैं जिनमें रजोगुण प्रधान हो जाता है और तमो तथा रजोगुण गौण रूप से कार्य करते हैं। ऐसे प्राणी परलोक वृत्ति को नहीं समझते। राम, कृष्ण, विष्णु शिवादि को नहीं मानते उन लोगों का सिद्धान्त होता है–

यावद्जीवेत् सुखं जिवेत्
ऋण कृत्वा घृतं पिवेत्।
भस्मी भूतस्य देहस्य
पुनर्रागमन कुतः।

अर्थात् मनुष्य संसार में जिन्दा रहे तब तक ऐश और आराम से रहे। कर्जा लेकर घी को पिये क्योंकि अन्त में शरीर जल कर भस्म हो जायेगा इसका पुनर्आगमन होगा ही नहीं। ऐसे प्राणी रजोगुण प्रधानक्षिप्तावस्था के प्राणी कहलाते हैं, तीसरे प्राणी वे हैं, जो विक्षिप्तावस्था के प्राणी कहलाते हैं इन लोगों में सतोगुण प्रधान तथा रजोगुण व तमोगुण गौण हो जाते हैं। ये परलौकिक विचारधारा मानते हैं श्रीराम, कृष्ण, विष्णु तथा शिवादि के अन्दर पूरी–पूरी श्रद्धा रखते हैं किन्तु रास्ता न मिलने के कारण विवश रहते हैं ये ही लोग अपने मुख से

बार–बार संकीर्तन किया करते हैं कि–

राम नाम रटते रहो

जब लगि घट में प्रान

कबहुं तो दीन दयाल के

भनक पड़ेगी कान।

इन लोगों में यह विश्वास अवश्य होता है कि ईश्वर का साक्षात्कार हो सकता है। भगवान राम, कृष्ण, विष्णु, शिवादि के दर्शन हो सकते हैं, किन्तु कोई उपाय न मिलने पर असमर्थ रहते हैं। इससे आगे चौथे, प्राणी–एकाग्र अवस्था के कहलाया करते हैं। इनमें सतोगुण चमक उठता है। मोहावरण क्षीण हो जाता है। पाँचों ज्ञानेन्द्रियाँ अन्तर्मुखता धारण कर लेती हैं और उस सतोगुण के दिव्य प्रकाश के अन्दर श्रीराम, श्रीकृष्ण, भगवान सदाशिव तथा अन्य देवी–देवताओं के दर्शन भी होने लगते हैं। धीरे–धीरे ये साधक ऋतम्भरा प्रज्ञा तक पहुँच जाते हैं और इनकी अनुभूतियँ सत्य होने लग जाती हैं। इससे आगे पाँचवी अवस्था निरोधावस्था है जिसमें जाकर के चित्त केवल अस्मि प्रत्यय रूप से ही शेष रहता है वह भी निर्बीज समाधि में जाकर बिल्कुल निरुद्ध हो जाता है। इस निर्बीज समाधि में ही स्वरूप में आत्मा प्रतिष्ठित हो जाती है, इस स्थिति में चित्तवृत्ति निरोध को प्राप्त करके ''योश्चित्त वृत्ति निरोधः'' इस सूत्र का यथार्थ ज्ञाता बन जाता है। इस ही निर्बीज समाधि को प्राप्त करके योगी अपने आपको समतावस्था में देखता है और प्राप्तव्य को पाकर कृत्य कृत्य हो जाता है।

हे गुरुदेव! आपके उपदेशामृत को सुनकर मैंने योग शब्द के अर्थ को भली प्रकार समझ लिया है। आशा है, आपकी पूर्ण कृपा से मैं अवश्य ही योगानुगामी बन जाऊँगा। सत्संग का समय समाप्त हो गया। सभी साधकों को इस प्रश्नोत्तरी से बहुत लाभ हुआ है एवं सभी अपनी वृत्तियों को योगानुगामी बनाकर अपनी परम कुटियों को चले गये।

आशा है अन्य सभी जिज्ञासु पाठक गण भी इस प्रश्नोत्तरी को पढ़कर अपने मनों को योगानुगामी बनायेंगे एवं जीवन साफल्य गामी बनेंगे।

शुचिता की आवश्यकता

श्रीमती सरिता भारद्वाज सांख्ययोगाचार्य

योग के आठ अंगों में यम प्रथम अंग है, जिसके अन्तर्गत अहिंसा सत्य अस्तेय ब्रह्मचर्य का समुदाय है। यम की साधना सार्वभौम महाव्रत है जिसे विश्व के सभी मानव धर्म, जाति, सम्प्रदाय भाषा तथा भौगोलिक सीमा के बिना पालन कर सकते हैं, यम की साधना कर लेने से योगी समाधि से जब नीचे उतरता है तो भी व्युत्थान दशा में जिस भूमिका पर वह रहता है वह भूमिका भी पापकर्म के संस्कारों से रहित होती है—क्योंकि उसकी यम नियमों की साधना ने ऐसा कोई छिद्र नहीं छोड़ा होता जहाँ से क्लेश कर्मों के संस्कार प्रवाहित हो सके। यम की साधना के पश्चात् नियमों की साधना है। नियम योग का द्वितीय अंग है। योग सूत्र में भगवान् पतंजलि नियमों की गणना इस प्रकार कराते हैं—**''शौच संतोष तप: स्वाध्याय ईश्वर प्रणिधानाधि नियमा:।''** 2/3। शौच सन्तोष तप स्वाध्याय और ईश्वर समर्पण ये पाँच नियम हैं। यमों की अपेक्षा नियमों की साधना लक्ष्य तक पहुँचाने में अपेक्षाकृत शीघ्र सहायक होती है। व्यक्ति अपने जीवन में योग के किसी एक अंग की ही पूर्णता के साथ साधना कर ले तो वह अंग ही सम्पूर्ण योग का फल देने वाला बन जाया करता है। क्योंकि अंग में अंगी सन्निहित होता है। साधक के जीवन में शौच अर्थात् पवित्रता की धारणा हो जाये तो यह साधना उसे कैवल्य लाभ तक पहुँचा सकती है। भगवान् पतंजलि ने इस बात का संकेत निम्नलिखित शास्त्र में दिया—

'सत्यपुरुषो: शुद्धिसाम्ये कैवल्यमिति'। 3

प्रकृति और पुरुष का मिलाजुला स्वरूप अलग—अलग हो जाये, दोनों अपने शुद्धस्वरूप में आ जायें तो शुद्धि से योगी कैवल्य लाभ करने में समर्थ होता है। पुरुष बुद्धिसत्व के क्लेशकर्मवासना भोग से मुक्त होकर निर्मल ज्योतिस्वरूप हो जाता है तथा प्रकृति भी पुरुष के भोग से उपरत हो जाने पर फिर भोग—साधनारूप दृश्य उपस्थित नहीं करती। इस प्रकार पुरुष के प्रतिबिम्ब से वह भी रहित होकर अपने असली रूप में आ जाती है, यही सत्व शुद्धि है। दोनों ही शुद्ध स्वरूप में होते हैं। अत: ईश्वर और अनीश्वर गुणों की साम्यावस्था हो जाती है। इससे प्रकृति और पुरुष दोनों की गुण धर्मिता से मुक्ति हो जाती है। विवेक ज्ञान होने पर अज्ञान निवृत्त हो जाता है। अज्ञान के दूर होने पर क्लेशमूलक कर्मविपाक का भी अभाव हो जाता है। दोनों की स्वतन्त्र स्थिति एक जैसे होती है यही साम्यता है वैसे उनका तलाक हो जाता है, अवधूत दत्तात्रेय ने दोनों के संयोग और वियोग रूप का सुन्दर दृष्टान्तों

द्वारा चित्रण किया है–

'मशकः उदम्बरे इषीका, मुंज मत्स्याम्भसा यथा।
एकत्वेऽपि पृथग्भावः, तथा क्षेत्रात्मनोर्नृप।।

मा. पु. 16

जैसे गूलर में कीड़े मूंज में सींके तथा जल में मछली एकीभाव से रहकर भी एक दूसरे से अलग हैं, इसी प्रकार पुरुष (आत्मा) तथा प्रकृति (क्षेत्र) अलग–अलग हैं।

शौच भावना दृढ़ होने से सन्तोष अर्थात् पदार्थों की अनित्यता समझकर उनके प्रति अलिप्सा की उपलब्धि हो जाती है। अनीश्वर गुणों के क्षय के लिये प्राण संरोधरूप का उदय हो जाता है तथा उससे स्वाध्याय होने लगता है। स्वाध्याय के परिणामवरूप परम गुरु ईश्वर को सर्व कर्म समर्पणरूप ईश्वर प्रणिधान होता है जिससे निर्विघ्न कैवल्य लाभ प्राप्त हो जाता है। ईश्वर की कृपा से योगी सदा योगयुक्त होता है।

शुद्धि की भावना से मनुष्य का देहाध्यास छूट जाता है। देह और गेह की ममता ही दुःख का मूल है।

'ममेति मूलं दुःखस्य, न ममेति निर्वृतिः।

मा. पु.

अवधूत दत्तात्रेय अलर्क को दुःख का स्वरूप समझाते हैं कि मेरी देह, मेरा घर, यह मेरा–मेरा ही दुःख की जड़ है, मेरा नहीं की भावना ही सुख का मूल है। जैसे बिल्ली घर में आकर चूहे खाती है तो हमें दुःख नहीं होता किन्तु वह बिल्ली हमारी पालतू चिड़ियाँ या मुर्गी को खा लेती है तो हम लाल–पीले हो जाते हैं। ममता रूपी अंकुर से ही अज्ञान रूपी महावृक्ष उत्पन्न होता है। घर, जर, जमीन उसकी ऊँची–ऊँची शाखायें हैं तथा स्त्री पुत्रादि उसके पत्ते हैं, पुण्य पाप उसके फल तथा सुख–दुख उसके बड़े फल हैं। मोह सम्बन्ध वृक्ष की रक्षा करने वाला थांवला है, यह वृक्ष बढ़कर मोक्ष–मार्ग को ढक रहा है। भ्रान्तिवश जो अनित्य अशुचि इस अविद्यातरु का आश्रय लेता है उसे शान्ति तथा शीतल छाया कहाँ से मिल सकती है? अतः–

''यस्तु सत्संग पाषाण शितेन ममता तरुः।
छिन्नोविद्या कुठारेण ते गतास्तेन वर्त्मना।।

मा. पु.

विद्या रूपी कुठार को सत्संग रूपी पत्थर से तेज करके, इस ममता रूपी वृक्ष का उससे छेदन करने में समर्थ होने वाले विरले पुरुष ब्रह्म के पद को प्राप्त कर सकते हैं, यह ब्रह्मपद शीतलता तथा शान्ति प्रदान करने वाला निष्कण्टक मार्ग है।

शौच भावना से ममता का नाश होता है, शौच निष्ठा का परिणाम बताते हुए महर्षि पतंजलि कहते हैं–

शौचात्स्वाङ्ग जुगुप्सा परैरसंसर्गः।

2/40

अशुचि, अपवित्रता का साक्षात्कार होने पर अपने शरीर में आसक्ति नहीं रहती, शरीर की आसक्ति से व्यक्ति उसको सजाने, सम्हालने उसे ठीक रखने के लिए धन और समय ही खर्च नहीं करता, न जाने कितने अनर्थ भी करता है। शरीर को बार–बार धोने, सम्भालने पर भी वह बात, पित्त, कफ, मलमूत्र, पीब के विकारों से भरा रहता है। निरन्तर क्षीण होता रहता है। जिन्हें विवेक हो जाता है वे इस अपवित्र शरीर के लिए चिन्तारहित हो जाते हैं। शरीर की शुद्धि करते–करते भी वह दुर्गन्धि और रोगाणुओं का घर बना रहता है, यह समझकर योगी लोग शरीर पर गर्व नहीं करते न अंगों की सुन्दरता पर मुग्ध होते हैं। शरीर शुद्धि होने से रूपासक्ति हो जाती है। किसी का सुन्दर शरीर रूप देखा, उसके पीछे दीवाने हो जाते हैं। उसे प्राप्त करने के लिए सर्वस्व दाँव पर लगा देते हैं। ग्रीक साहित्य तो क्लिओपेट्रा जैसी सुन्दरी नारियों को प्राप्त करने के लिए किए गए युद्धों के वर्णनों से भरा है। शरीर में दोष दर्शन होने लगे तो किसी के शरीर में आसक्ति नहीं होती। जब सुन्दर शरीर प्राप्त नहीं हो पाते तो कुछ लोग आत्मत्या तक कर लेते हैं तथा कुछ सुन्दरियों की हत्या तक कर देते हैं। शौच भावना के विकास से दूसरों के शरीर में भी आसक्ति नहीं होती। किसी को चाटना, चूमना या उसके शरीर की निन्दा या प्रशंसा करना भी नहीं अच्छा लगता। स्त्री हँसती है तो उसकी मुस्कान या उसके दाँतों पर साधक आसक्त नहीं होता क्योंकि दाँत यथार्थ ज्ञान में हड्डी से भिन्न कोई अन्य पदार्थ नहीं है, नेत्रों की सुन्दरता भी कोई आसक्त होने वाली चीज नहीं है क्योंकि वह भी वसा का विकार है। उसके स्तन मांस पिण्ड मात्र हैं तथा उसके अंग प्रत्यंग मलमूत्र वसा अस्थि मांस से भिन्न कुछ नहीं है। इस प्रकार शुद्धता का बोध होने पर दूसरे शरीरों के प्रति मोह भी नष्ट हो जाता है।

बाह्य शौच के अभ्यास के बाद जब अन्तःशौच का अभ्यास हो जाता है, भीतर की शुद्धि से चित्त के रागद्वेष आदि मल दूर हो जाते हैं तो–

'सत्त्वशुद्धिसौमनस्यैकाग्रयेन्द्रिय–जयात्म दर्शन योग्यत्वानिच।'

2/41

चित्त के मल नष्ट होने पर सतोगुण का विकास होता है जिससे स्वतः आनन्दानुभूति होती है। आनन्दमय चित्त रहने से 'गीता' में प्रतिपादित–

प्रसन्न चेतसो ह्याशु बुद्धिः पर्यवतिष्ठते'

तथा

प्रसादे सर्वदु:खानां हानिरस्योपजायते

सिद्धान्तानुसार विक्षेपों का अभाव हो जाता है जिससे बुद्धि एकाग्र हो जाती है। एकाग्रता से प्रत्याहार एवं इन्द्रिय जय तथा आत्मदर्शन की योग्यता प्राप्त होती है।

यम सार्वभौम महाव्रत कहे गये हैं क्योंकि वे प्रत्येक देश प्रत्येक काल तथा प्रत्येक अवस्था में नियत रूप से सभी के द्वारा निभाये जा सकते हैं। यम आन्तरिक चेतना से अधिक जुड़े हैं किन्तु नियम बाह्य तथा आन्तरिक दोनों विधानों से युक्त हैं तथा प्रवृत्ति परायण के लिए अधिक उपयोगी हैं। योगसूत्रों के व्याख्याकार नागोजीभट्ट का मत है कि–

'यम नियमयो: यमानां निवृत्ति रूपत्वेन शक्यसम्पदानत्वेन त एव परमहंसानामावश्यका:। नियमास्तुत प्रवृत्ति रूपतया योगान्तरायत्वेन नावश्यका:।'
'यमानमीक्ष्णं सेवेत नियमान्मत्पर: क्वचित्'। **–'इति स्मृतेश्च'**

यम निवृत्ति मार्ग को प्रशस्त करने वाले हैं। अत: परमहंस जीवनमुक्तों को उनका पालन आवश्यक है। नियम प्रवृत्ति मार्ग में ले जाने वाले होने से योग के अन्तराय बन जाते हैं। अत: आवश्यक नहीं है। अपने मत का उपन्यास करते हुए नागोजी भट्ट ने साक्ष्य रूप में स्मृति वाक्य को उद्धृत किया है। जिसका आशय है कि यमों को अनिवार्य रूप से पालन करना चाहिए, नियमों को कहीं–कहीं पालन करना चाहिए। नियमों के विषय में मार्कण्डेय पुराण में भी यह व्यवस्था दी गई है कि वर्णाश्रम धर्म का पालन करने वाले व्यक्ति को नियम आवश्यक है और वे नियम हैं–

सत्यं शौचम् अहिंसा च अनसूया तथा क्षमा।
आनृशंस्यम् अकार्यणयं संतोषश्चाष्टमो गुण:।।

सत्य, शौच, अहिंसा, अनसूया, क्षमा, आनृशंसता, अकृपणता, ये आठ नियम सभी वर्णाश्रमों को पालन करना चाहिए। महाराज मनु ने उपनयन के बाद शुचिता की शिक्षा सर्वप्रथम आदेश दिया है–

'उपनीय गुरु: शिष्यं शिक्षेत् शौचमादित:।'

शरीर शुद्धि से लेकर मन:शुद्धि, ऐन्द्रिय शुद्धि, आत्मशुद्धि, स्थानशुद्धि, भूतशुद्धि, माला शुद्धि, मन्त्रशुद्धि, अर्थशुद्धि, शब्दशुद्धि आदि सभी प्रकार की शुद्धता सिखाने का संकेत इस वाक्य में किया गया है। शौच में शुद्धता के साथ पवित्रता का भाव भी सन्निहित है। कोई वस्तु शुद्ध होते हुए भी पवित्र नहीं हो सकती तथा पवित्र होने पर भी अशुद्ध हो सकती है। जैसे शौचालय फिनायल से धोकर साफ कर दिया जाये तो वह साफ तथा शुद्ध तो हो गया किन्तु वहाँ बैठकर भोजन नहीं किया जा सकता। क्योंकि शुद्ध होते हुए भी वह

स्थान पवित्र नहीं है। पवित्रता की भावना कर्म के द्वारा आती है। शौचालय में शौचकर्म की भावना के कारण शुद्ध होने पर भी वह पवित्र नहीं कहा जा सकता। शौच भावना का विकास होता चला जाये तभी कल्याण है अन्यथा मिट्टी से इतने बार हाथ धोना, एक बार बाईं ओर कुल्ला करना फिर दाईं ओर कुल्ला करना आदि आचार संहिता के वितण्डावाद में उलझकर साधक रह जाता है जो जल गड्ढे में गिरकर रह जाता है वह सड़ने लगता है। जो सतत् प्रवाहित होकर आगे चलता चला जाता है वह अनन्त जलराशि का अंग बन जाता है। वस्तुतः शुचिता के मूल में यही सिद्धान्त है कि अंश पूर्ण में मिलने पर पवित्र हो जाता है। जूठा जल यदि बहती हुई नदी में फेंक दिया जाये तो नदी के जल के संयोग से वह भी शुद्ध जल बन जाता है। शौच के अभाव में व्यक्ति शोक गस्त होता है। शुचिता की कमी ही शोक है। गन्दगी साफ भी न हो जाये तो गन्दगी से रोग होकर शोक होगा। मन में राग–द्वेष की शुद्धि न हुई तो परिणाम शोक होगा। शूद्र वही है जो शुचिता से अलग है। जिसमें शुद्ध रहने की वृत्ति नहीं है वही शूद्र माना जाता है। जो संस्कारों के द्वारा शुद्ध हो पवित्र हो जाता है, जैसा था, उससे शुद्ध हो जाता है, वह द्विज कहलाता है। शूद्र में देह–धन गेह तथा अहंकार का अधिक बोध होता है। फलस्वरूप उसके जीवन में शोक और दुःख अधिक रहता है। जो विवेक वैराग्य से शुद्ध हो जाता है वह ब्राह्मण कहलाता है। उसके जीवन में संतोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर–शरणागति की वृत्ति सहज हो जाती है। भारतीय समाज में छूआछूत का विकृत भाव अज्ञान और पाखण्ड के कारण फैल गया है। तात्विक दृष्टि से आध्यात्मिक जीवन–यापन करने वाले में ही अस्पृश्य की निष्ठा तात्विक होती है बाकी सब पाखण्ड करते हैं। अपनी साधना की पराकाष्ठा पर पहुँचने पर आध्यात्मिक पुरुष भी **'शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः** *(गीता)*

कुत्ते और चाण्डाल को एक रूप से देखते हैं। यह स्थिति अज्ञानता के परिणामस्वरूप पैदा होने पर दोष बन जाती है।

झूठहिं लेना, झूठहिं देना।
झूठे भोजन, झूठ चबेना।।

यह कलियुग का धर्म बन गया है। भक्ष्या–भक्ष्य भोजन करने में हम लोग गौरव का अनुभव करते हैं।

'आहार शुद्धौ सत्व शुद्धिः सत्व शुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः।'

आहार शुद्धि से मन शुद्ध होता है तथा बुद्धि शुद्धि से स्मृति का उपस्थान होता है जिससे संस्कारों का साक्षात्कार होकर संस्कार चक्रों का समस्त चक्र काटने में साधक समर्थ होता है। अतः योगाभ्यास करने वाले साधक को पवित्रता से बनाये हुए, अपने इष्ट को

भोग लगाकर 'यज्ञशेष' भोजन को पवित्र स्थान पर बैठकर शान्त तथा प्रसन्नचित से करना चाहिए जिससे चित्त की चंचलता दूर हो। भोजन शुद्ध और सात्विक हो तथा हिंसा तथा अन्याय से प्राप्त न हो तभी आहार शुद्धि होगी। प्राणायाम, आसन, मुद्रा, बन्ध तथा जप से शरीर तथा मन की शुद्धि होती है तथा धारणा, ध्यान, समाधि से बुद्धिसत्व की शुद्धि होती है।

शौच निष्ठा का अभ्यास होने पर साधक को पवित्र आत्माओं का सान्निध्य प्राप्त होता है। भगवान श्रीकृष्ण के अनुसार–

शुचिनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते।

शुचितामय वातावरण में योगी जन्म लेते हैं। माता–पिताओं का जीवन पवित्र होता है। उनके यहाँ योगभ्रष्ट जन्म लिया करते हैं। शौच भावना की पराकाष्ठा, निरभिमानिता, अहिंसा, क्षमा, सरलता, गुरु की सेवा, स्थिरता तथा आत्मनियन्त्रण द्वारा ही सच्चा ज्ञान प्राप्त होता है।

'आचार्योपासनं शौचं स्थैर्यमात्म विनिग्रहः।'

13/7

शौच भावना को दैवी सम्पत्ति में परिगणित किया गया है। दैवी सम्पत्ति सम्पन्न साधन मोक्ष पद पर आरूढ़ हो पाता है।

'तेजः क्षमा धृतिः शौचम द्रोहो नाति मानिता।
भवन्ति संपदं दैवीमभिगातस्य भारत।।

गीता 16/3

आसुरी प्रवृत्ति के व्यक्तियों में न शौच होता है न आचार तथा जीवन में सत्य व्यवहार होता है।

प्रवृत्तिं च निवृत्तिं चजना न विदुरा सुराः।
न शौचं न चापिचा चारोन सत्यं तेपु विद्यते।।

17/7

भगवान श्रीकृष्ण ने शौच को शारीरिक तप कहा है।

देव द्विज गुरु प्राज्ञपूजनं शौचमार्जवम्।
ब्रह्मचर्यमहिंसा च शरीरं तप उच्यते।।

17/14

देव, ब्रह्म, गुरु तथा विद्वानों का पूजन, शुचिता, सरलता, ब्रह्मचर्य तथा अहिंसा का पालन शारीरिक तप कहा गया है।

'तपसा चीयते ब्रह्म'।

तपस्या के द्वारा ब्रह्म की प्राप्ति होती है। ब्रह्म की अनुभूति करने वाले अर्थात् ब्राह्मणों के स्वभाव में ही शम, दम, तप, शौच, क्षमा, सरलता, ज्ञान–विज्ञान, प्रेम तथा ईश्वर में विश्वास होता है।

''शमोदमस्तपः शौचं–
क्षान्तिरार्जवम् एव च।
ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं–
ब्रह्मकर्म स्वभावजम्।।

18/42

शौच के सामान्य उपाय

''अद्भिर्गात्राणि शुध्द्यन्ति–
मनः सत्येन शुध्द्यति।
विद्या तपोभ्यां भूतात्मा–
बुद्धिर्जानेन शुद्ध्यति।।

जल और मिट्टी से शरीर शुद्धि होती है। मन की शुद्ध सत्य भाषण से होती है। विद्या तथा तप से भूतो की शुद्धि होती है तथा बुद्धि की शुद्धि ज्ञान से होती है।

मलमूत्र त्याग करने के पश्चात् शुद्धि आवश्यक है। दिन में उत्तर दिशा की ओर तथा रात्रि में दक्षिण दिशा की ओर तथा दोनों सन्ध्या काल में उत्तर की ओर मुँह करके मलमूत्र त्याग करें। मलमूत्र त्याग कर गुदा और और मूत्रेन्द्रिय की मिट्टी तथा जल से शुद्धि करें। तत्पश्चात् सात बार दोनों हाथों को मिट्टी से साफ करें। साबुन से हाथ धोने पर दुर्गन्ध नहीं जाती तथा नाक, कान तथा दाँतों के रोग हो जाते हैं। समस्त गन्धों का मूल पृथ्वी है।

'गन्धवती पृथिवी'।

अतः मिट्टी हाथ से धोना चाहिए। पैरों को धोना भी आवश्यक है जिससे सिरो रोग न हों। मलत्याग के बाद बारह बार कुल्ला करें। भोजन के बाद सोलह बार तथा मूत्रत्याग के बाद चार कुल्ले करें। जिह्वा को खींचकर मलने से जिह्वा शुद्ध होती है। हाथ में अंगूठे से रगड़कर मुख के ऊपरी भाग तथा तालू की शुद्धि करें। बबूल या मौलश्री तथा नीम की दातुन से दाँतों की शुद्धि होती है। टूथपेस्ट से जिह्वा तथा मुख में स्थित अन्नाशय के सूक्ष्म तन्तु शुद्ध नहीं हो पाते जिससे उदर रोग हो जाते हैं।

स्नान से शरीर शुद्धि करनी चाहिए। बाहरी जल का स्नान बाह्य शरीर को शुद्ध करता है तथा मानसिक स्नान योगियों को पवित्र करता है। इड़ा पिंगला तथा सुषुम्णा नाड़ियाँ गंगा,

यमुना, सरस्वती नदियाँ हैं। जिनका संगम आज्ञा चक्र में होता है। उसमें ध्यान करने से योगी का स्नान होता है। तथापि ठंडे जल से स्नान करें। स्नान के समय पवित्र होने की भावना को दृढ़ करता जाये। स्नान के बाद आसन सगर्भ (मंत्रपूर्वक) प्राणायाम तथा मन्त्र जप ध्यान करने से सम्पूर्ण शुद्धि होती है। नेति, धोति, नौली, वस्ती कपालभांति तथा त्राटक की क्रियाओं से नाड़ी शुद्धि होती है। राजयोग के द्वारा भी मनोलय के साथ प्राणलय होने पर इन क्रियाओं के बिना ही नाड़ी शुद्ध हो जाती है। सूत्र, जल, दुग्ध, तथा घृत, नेति, वारिसार, कुँजल तथा बन्धों के अभ्यास से शरीर के दोषों से शुद्धि होती है जिससे चित्त प्रसादयुक्त बनता है।

देवता का पूजन तथा गुरुसेवा वस्त्र तथा शरीर शुद्धि के बाद ही करनी चाहिए। शास्त्रों में ऐसा उल्लेख है कि जो मालिन रह कर देव कार्य करता है उसका वंश नहीं चलता।

निर्बीजत्वं नरो याति
नारी वा शौच वर्जिता।

मार्कंडेय पु.

शौच के नियम

चक्षुः पूतः चरेन्मार्ग–
वस्त्रपूतं तत्रं पिवेत्
सत्यपूतं वदेद्वाक्यं–
मनः पूतं ससाचरेत्।।

लिंग पुराण

मार्ग में भलीभांति देखकर चलें तथा वस्त्र से छानकर जल पियें सत्य वचन पवित्र होते हैं तथा सोच–विचारकर किया गया कार्य पवित्र होता है। अपवित्र जल पीने पर पाँच सौ बार अघोरमन्त्र का जाप करने से शुद्धि होती है। लिंग पुराण

गुरु द्रोह के पातक की शुद्धि एक करोड़ प्रणव जप से होती।

तीर्थोदकं वह्निश्च–
नान्यतः शुद्धिर्महति।'

–कालिदास

तीर्थों का जल तथा अग्नि स्वयं ही पवित्र हैं तथा दूसरों को पवित्र करने वाले हैं अतः इनके सेवन से सारे पातकों की शुद्धि हो जाती है।

वस्त्रों की शुद्धि

रेशमी तथा ऊनी वस्त्रों की शुद्धि रुक्ष वायु से होती है। अण्डी वस्त्रों (क्षौम) की शुद्धि सफेद सरसों से, छाग कम्बलों शुद्धि तक से अन्य प्रकार के वस्त्रों की शुद्धि जल से होती है।

वस्तु शुद्धि

वस्त्र, माला, आसन और पोथी अपनी ही प्रयोग में लावें। क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति के परमाणु उसकी वस्तुओं के साथ लग जाते हैं। अपने काम में आने वाली वस्तुओं को पवित्र कर ही प्रयोग में लाना चाहिए। कांसे का पात्र भस्म से, लौह पात्र क्षार से, ताम्र पात्र खटाई से रांगा और शीशे का पात्र भी खटाई से शुद्ध होता है। सोने और चाँदी का पात्र जल से धोने मात्र से शुद्ध हो जाते हैं। धातु पात्र दूषित होने पर अग्नि में तपाने से शुद्ध हो जाते हैं।

तृण तथा काष्ठादि वस्तुओं की शुद्धि पवित्र जल के द्वारा होती है। यज्ञपात्रों–सींग, अस्थि, दाँत आदि के बने पात्रों की शुद्धि छिलाई कर देने से होती है। अन्न भी कुशाजल से प्रोक्षण करने पर शुद्ध हो जाता है। शाक, मूल तथा फलों को शुद्धि भी कुशा द्वारा जल मार्जन से होती है। घर की शुद्धि गाय के गोबर से लेप करने पर होती है। गाय की प्यास बुझ जाये इतना जल यदि भूमि में हो तो वह शुद्ध माना जाता है। धोबी के यहाँ से धुल कर आये वस्त्र कुशाजल के प्रोक्षण से पवित्र होते हैं। शयन, भोजन, जमांई, पेय पदार्थ पीकर थूककर जल से आचमन करने से मुख की शुद्धि होती है।

कौआ, कुत्ता, शूअर, गधा, चाण्डाल, मुर्गा आदि का स्पर्श होने पर तथा मैथुन के पश्चात् स्नान करने से शुद्धि होती है। रजस्वला तथा सूतिका स्त्री तथा अन्त्यजा स्त्री का स्पर्श होने पर स्नान से शुद्धि करनी चाहिए। वेदज्ञ ब्राह्मण की शुद्धि एक दिन में हो जाती है अन्य असगोत्र वाले व्यक्तियों की मृतक तथा जातक अशौच में चतुर्थ दिन में शुद्धि होती है। जो कुटुम्बी हैं। उनकी शुद्धि ग्यारहवें दिन के पश्चात् स्नान करने से होती है। छः महीने के बाद तीन वर्ष पर्यन्त तक मरने का पता चले तो तीन रात्रि का अशौच होता है।

सूतिका अशौच दश दिन तक माता को होता है तथा पिता को तीन रात्रि का अशौच होता है। अशौच सात पीढ़ी तक सपिण्डता होने पर एक ही गोत्र के लोगों को होता है। एक वर्ष के बाद अशौच का समाचार मिले तो स्नान करने से शुद्धि हो जाती है। बान्धव के अतिरिक्त अन्य किसी का दाह कर्म करने पर वस्त्रों सहित स्नान करने से उसी दिन शुद्धि हो जाती है। श्मशान यात्रा में सम्मिलित होने पर स्नान कर घृत का पान करने से शुद्धि हो जाती है। आचार्य और गुरु के मरने पर तीन रात्रि अशौच माना है। मामा के मरने पर तीन रात्रि का अशौच होता है।

यह शौचशौच विचार गृहस्थों के तथा ब्रह्मचारियों के लिए विशेषरूप से पालन करना चाहिए। शास्त्रकारों का कथन है कि यतियों, संन्यासियों तथा विरला को ये नियम पालन करना अनिवार्य नहीं है।

'अशौचं चानुपूर्वणायतीनां नैव विद्यते।'

लिंगपुराण

स्त्रियों को शौचाचार का अधिक ध्यान चाहिए। रजस्वला स्त्रियों को सम्भाषण, स्नान, गान, रोदन, सहास्य, सवारी में जाना, काजल लगाना, ताश आदि खेलना, दिवाशयन, क्रीम पाउडर लगाना, दन्त धावन, मैथुन तथा दांतुन करना वर्जित है। रजो दर्शन के प्रथम दिन स्त्री चाण्डाली के समान, द्वितीय दिन ब्रह्म घातिनी के समान तथा तीसरे दिन आधी अशुद्ध होने से स्पर्श योग्य नहीं होती तथा अशुद्ध मानी जाती है। चौथे दिन स्नान करके भी पन्द्रह दिन तक रज की अशुद्ध विद्यमान रहती है। अतः रजस्वला को देवार्चन और नमस्कार के कार्य नही करने चाहिए उसके सम्भाषण तथा अंग स्पर्श से रजस्वला के दोष आ जाते हैं। शुद्धि स्नान के बाद स्त्री को परपुरुष का दर्शन नहीं करना चाहिए। सर्वप्रथम भगवान भास्कर के दर्शन कर पंचगव्य अथा दुग्ध पीकर आत्मा शुद्धि करें।

इसी प्रकार धन शुद्धि चतुर्थ धर्मकार्य करने से होती है। श्रीमद्‌भागवत् में सब प्रकार की शुद्धि के निम्न उपायों का उल्लेख है।

कालेन स्नान शौचाभ्याम्
संस्कारैः तपसेज्या।
शुद्धयन्ति दानैः सन्तुष्टयां
द्रवाणयाऽऽत्मविद्यया।।

10/5/4/50

गर्भ शुद्धि संस्कारों से, भूमि, नूतन जल आदि की शुद्धि समय पर स्वतः शरीरादि की शुद्धि स्नान से, इन्द्रिय मन की शुद्धि तपस्या से ब्राह्मणादि की यज्ञ से, धन धान्य की शुद्धि दान से, सन्तोष से मन की तथा आत्मज्ञान से आत्मा की शुद्धि होती है।

जो ब्रह्मनिष्ठ युक्त योगी तथा ध्यानी है वे स्वर्ण के समान सदा निर्लिप्त तथा शुद्ध होते हैं। अतः विशुद्धों की शुद्धि की कोई आवश्यकता नहीं है। जैसे कि लिंग पुराण में कहा गया है—

योगध्यानैकनिष्ठाश्च
निर्लेपाः काचनं यथा।
शुद्धान्तं शोधन नास्ति
विशुद्धा ब्रह्म विद्यया।

रामकृष्ण परमहंस कहा करते थे कि जिन का लोटा सोने का है उन्हें उसे मांजने की जरूरत नहीं है किन्तु जिनका पीतल का है उन्हें प्रतिदिन उसे साफ करना चाहिए। उसी तरह जो समाधिनिष्ठा नहीं हुए उन्हें स्वयं के लिए तथा लोक मर्यादा के लिए इनका पालन करना चाहिए।

सब कुछ शून्य और पूर्ण

अन्तः शून्यो बहिःशून्यः शून्यः कुम्भ इवाम्बरे।
अंतः पूर्णो बहिः पूर्णः पूर्णः कुम्भ इवार्णवे।।

अन्तः करण में शून्य है अर्थात् ब्रह्म से भिन्न वृत्ति का अभाव होने से शून्य है अन्तःकरण से बाहर भी शून्य है अर्थात् ब्रह्म से अतिरिक्त कुछ नहीं है। जैसे आकाश में घड़ा के समान अन्दर तथा बाहर शून्य है औरअन्तःकरण में पूर्ण है अर्थात् अन्तःकरण में वायु पूर्ण है। ब्रह्माकार वृत्ति हो जाने से अथवा ब्रह्म का निवास होने से अन्तः करण के बाहर भी पूर्ण है अथवा हृदयाकाश से बाहर भी पूर्ण है। सत्ता द्वारा ब्रह्मानिरिक्त वृत्ति के अभाव से अथवा ब्रह्म पूर्ण होने से जैसे समुद्र में घड़ा भीतर से पूर्ण होता है। इसी प्रकार समाधि में स्थित योगी भी ब्रह्म से पूर्ण होता है।

-हठयोग प्रदीपिका

कबीर की बानी

गुरु गोबिंद तौ एक है, दूजा यहु आकार।
आपा मेट जीवत मरै, तौ पावै करतार।।
कबीर निरभै राम जपि, जब लगि दीयै बाति।
तेल घटा बाती बुझी, सोवैगा दिन राति।।
लम्बा मारग दूर घर, विकट पंथ बहु मार।
कहौ संतौ क्यों पाइये, दुर्लभ हरि-दीदार।।
बहुत दिनन को जोबती, बाट तुम्हारी राम।
जिय तरसै तुझ मिलन कूं, मन नाहीं विश्राम।।
समंदर लागी आगि, नदियाँ जलि कोयला भई।
देखि कबीरा जागि, मंछी रूखा चढ़ि गई।।

SIDDHYOG Postal Regd. No.: Agra 19/21-23

APRIL 2023

प्रेषण कार्यालय :

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक
उच्चकोटि का हिन्दी मासिक

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र

सवाँई (एत्मादपुर) आगरा (उ.प्र.)

PRINTED MATTER BOOK-POST

श्री/सुश्री ____________________

____

____

अतीव सूक्ष्मं परमात्म तत्वम्

अतीव सूक्ष्मं परमात्मा तत्वम् न स्थूल दृष्ट्या प्रतिपत्तु मर्हति।
समाधिनात्यन्त सुसूक्ष्म वृत्या ज्ञातव्यमार्यैरतिशुद्ध बुद्धिभि।।

परमात्मा तत्व अत्यन्त सूक्ष्म है, उसे स्थूल दृष्टि से कोई भी प्राप्त नहीं कर सकता।?
इसलिए अति शुद्ध बुद्धि वाले सत्पुरुषों को उसे समाधि द्वारा अति सूक्ष्म वृत्ति से जानना चाहिए।

संस्थापक :– योगयोगेश्वर अनन्तश्री मन्दमोहन जी महाराज। मुद्रक एवं प्रकाशक डॉ. [illegible] शर्मा के लिए राष्ट्रीय ब्लॉक एवं प्रिंटिग वर्क्स, आगरा–3 से मुद्रित एवं श्री योग प्रशिक्षण केन्द्र, सवाँई (एत्मादपुर) आगरा से प्रकाशित। आर.एन.आई. नं. UPHIN/2004/14566 सम्पादक : आचार्य प. (डॉ.) [illegible] शर्मा